हिन्दुओंकी राजकल्पना.

...प्रसाद वाजपेयी।

हिन्दुओंकी राजकल्पना।

अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

लिखित।

कलकत्ता,

नं० ९७ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट,

भारतमित्र प्रेसमें काशीपद घोषद्वारा

मुद्रित और प्रकाशित।

संवत् १९७०

ॐ श्रीगणेशायनमः ।

हिन्दुओंकी राजकल्पना ।

भूमिका ।

इस छोटीसी पुस्तकके लिये भूमिकाका प्रयोजन नहीं है, क्योंकि यह स्वयं हिन्दू राजनीति शास्त्रको भूमिका मात्र है। पर इसके विषयमें बहुतेरी बातें ऐसी हैं जिनके बतानेकी आवश्यकता है और इसीलिये यह भूमिका लिखी जाती है।

संस्कृतमें शुक्रनीति और कामन्दकीय राजनीतिके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, पर इस पुस्तकमें उनसे सहायता नहीं ली गयी है। इसका आधार वेद, रामायण, महाभारत और मनुस्मृति है। अन्य ग्रन्थोंके भी कुछ वचन लिख दिये गये हैं, पर उनका पूरा उपयोग नहीं किया गया।

यह पुस्तक अपने ढङ्गकी नयी है। भारतीय किसी भाषा वा अङ्गरेजीमें अभीतक ऐसी पुस्तक देखनेमें नहीं आयी। मेरी इच्छा थी कि, वैदिक साहित्यके सुपण्डित इस के लिखनेका श्रम उठाते, पर ऐसा होता नहीं दिखायी दिया।

इस प्रकारकी पुस्तक लिखनेका भाव मेरे मनमें कई वर्ष पहले उदय हुआ था। [illegible]

विषय सूची ।

धर्म्म।

हिन्दुओंके राष्ट्रीय जीवनमें धर्म्मकी प्रधानता है; पर आज-कल धर्म्म शब्दसे जिन विषयोंका बोध होता है, वे उसके अङ्ग-मात्र हैं। पूर्ण धार्मिक हिन्दू बहुत कम देखनेमें आते हैं। इसका कारण यही है कि, बहुतोंको धर्म्मका स्वरूप ही अज्ञात है। वे साधारणत: सन्ध्या, पूजा, गङ्गास्नान, जप, दान जैसे कार्योंको ही धर्म्म समझते हैं। अङ्गरेजी पढ़े लिखे हिन्दु-ओंकी दृष्टिमें ईसाइयोंका "रेलिजन" शब्द ही धर्म्म है। फारसी अरबीके पण्डित हिन्दुओंको "मजहब" और "धर्म्म" पर्यायवाची जान पड़ते हैं। परन्तु हमारे पूजनीय ऋषि महर्षियों तथा धर्म्मसंस्थापकोंने कभी उल्लिखित बातोंमें ही धर्म्मको सीमाबद्ध नहीं माना। उनके मतमें लौकिक और पारलौकिक उन्नतिका साधक कार्य धर्म्म है। केवल मुक्तिप्राप्ति-की चेष्टा करनेवाला ही धार्मिक नहीं है। वह धर्म्म शरीरके एक अवयवमात्रका अनुयायी है, धर्म्मका नहीं। महर्षि कणादने अपने "वैशेषिक दर्शनमें" धर्म्मकी व्याख्या इस प्रकार की है;—

"यतो अभ्युदय-नि:श्रेयससिद्धि: सधर्म्म:।"

"अर्थात् जिससे ऐहिक उन्नति और पारमार्थिक मो

प्राप्ति हो, वही धर्म है।" वैदिक सिद्धान्तोंका पुनः प्रचार करनेवाले श्रीमदादि शङ्कराचार्य्यका कहना है कि,—

"जगतः स्थितिकारणं प्राणिनां साक्षादभ्युदये
निःश्रेयसहेतुर्यः स धर्म्मः।"

"अर्थात् जगतकी स्थितिका कारण और प्राणियोंका साक्षात् अभ्युदय तथा मोक्षप्राप्ति जिससे हो वही धर्म है।"

दोनों अवतरणोंको मिलाकर पढ़नेसे महर्षि कणाद और श्रीमदादि शङ्कराचार्यके मतोंमें धर्म्मकी व्याख्याके विषयमें मतभेद न देख पड़ेगा। दोनों आचार्य लौकिक उन्नति और पारलौकिक मोक्षप्राप्तिके साधक कार्योंको धर्म मानते हैं। परन्तु आजकल हम लोगोंमें लौकिक उन्नतिसाधनके कार्य तो धर्म्मके अन्तर्गत माने ही नहीं जाते। मोक्षप्राप्तिकी इच्छा बहुतोंको होती है, पर उसके साधन सुलभ नहीं हैं। साधारण हिन्दू सन्ध्या, पूजा, पाठ, जप, दान, होम प्रभृतिको ही मोक्षके साधक कार्य समझे बैठे हैं। ऐसी स्थितिमें धार्मिक हिन्दुओंका अभाव हो, तो आश्चर्य ही क्या है?

ऐहिक उन्नति और पारलौकिक मोक्षप्राप्ति धर्म्मके दो अङ्ग हैं। परन्तु पहलेकी ओर हमारे भाइयोंका ध्यान नहीं है, इसीसे धर्म्माचरण सर्वाङ्गपूर्ण नहीं होता। लौकिक वा ऐहिक उन्नतिमें मानव जातिकी सब प्रकारकी सांसारिक उन्नति परिगणित है। राजकीय, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक प्रभृति सब प्रकारकी उन्नति ऐहिक वा लौकिक

उन्नति है। जो धर्म्मके इस अङ्गको अवहेला करता है, वह सच्चा धार्मिक नहीं कहा जा सकता। साथ ही इस लोकमें ही उसे उसके अधार्म्मिक होनेका फल मिल जाता है।

लौकिक उन्नति और पारलौकिक मोक्षप्राप्तिके साधक कार्य धर्म्म और बाधक अधर्म्म हैं। जो लोग लौकिक उन्नतिमें बाधा देते हैं, वे धर्म्मके बाधक हैं। इसी प्रकार उसके सहायक धर्म्मके सहायक हैं। लौकिक उन्नतिसे विमुख होनेवाले धर्म्मसे पराङ्मुख हैं; पर उसके लिये यत्न करनेवाले धार्मिक हैं। साधारणतः हिन्दुओंने महर्षि कणाद और श्रीमदादि शङ्कराचार्य कथित धर्म्मका अनादर किया है, इसीलिये आज उनकी दुरवस्था है। परन्तु यदि वे फिर उनकी आज्ञाका पालन करने लग जायं, तो सब प्रकारके दुःख दारिद्र्यसे उनका पीछा छूट जाय। धर्म्म और अधर्म्मकी यह व्याख्या लोगोंको स्मरण रखनी चाहिये और लौकिक तथा पारलौकिक उन्नतिकी ओर समान ध्यान रखना चाहिये। ऐसा विना किये सर्वाङ्गीन धर्म्मका आचरण असम्भव है। कलियुगमें धर्म्मका एक चरण इसी लिये रह गया है कि, हम लोग धर्म्मका वास्तविक स्वरूप भूल गये हैं। यदि धर्म्मके कार्य किये जायं, तो वह अपने चारों चरणोंसे स्थिर रह सकता है। ऋषिवाक्य है कि, मनुष्य अच्छे कर्म्म करके कलियुगको सत्ययुगमें परिणत कर सकता है। इससे हम-लोग प्रयत्न करें, तो हमारी धार्मिक उन्नति हो सकती है।

राष्ट्रकी उत्पत्ति।

सांसारिक उन्नतिके लिये देशमें सब प्रकारकी सुव्यवस्था होनी चाहिये। इसके बिना लौकिक उन्नति असम्भव है। सृष्टि-के प्रारम्भमें कुछ भी सुव्यवस्था न थी। जङ्गली जानवरोंके आक्र-मणसे अपनी रक्षा करने और गार्हस्थ्य कार्यों के लिये मनु-ष्योंको परस्परकी सहायता लेनी पड़ती थी। जो लोग सहायता देते लेते हैं, उनका सङ्घ समाज कहलाता है। उस समय इस प्रकारकी समाजें उत्पन्न हो चुकी थीं। परन्तु इनसे सुव्यस्था नहीं हो सकती थी। इसलिये हमारे वैदिक ऋषियोंने सब समाजोंको मिलाकर बल, ओज और राष्ट्र उत्पन्न करनेका विचार किया। क्योंकि उन्होंने भद्रलोगोंका कल्याण इसीमें देखा।

धर्मशास्त्रकी आज्ञा है कि, जन्म लेकर मनुष्यको देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण चुकाना चाहिये। ऋषिऋण केवल ज्ञानविषयक ही नहीं है, उसमें राष्ट्रीय भाव भी है। जिस प्रकार ज्ञानदान करना ऋषिऋण चुकानेका एक मार्ग है, उसी प्रकार सत्यतापूर्वक राष्ट्रीय कर्त्तव्योंका पालन करना दूसरा मार्ग है। क्योंकि—

"भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपो दीक्षामुपसे दुरग्रे।
ततो राष्ट्रम्बलमोजश्च जातम् तदस्मै देवा उपसं नमन्तु॥"

अथर्ववेद १९।४१॥

अर्थात् "ज्ञानी ऋषियोंने (सब लोगोंके) कल्याणके लिये पहले दीक्षा स्वीकार की और तप किया। उससे बल, ओज और राष्ट्रकी उत्पत्ति हुई। इससे सब (दैवी सम्पत्तिसे) युक्त होनेवाले विद्वान् उन्हें नमस्कार करें।"

इस अवतरणसे जान पड़ता है कि, प्रत्येक व्यक्तिकी जो शक्ति विसंगत अवस्थामें थी, उसे एक केन्द्रमें एकत्र करनेका काम ऋषियोंने किया। इस एकत्र शक्तिने क्या किया, उसका वर्णन अथर्ववेदमें इस प्रकार मिलता है—

सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥ ८ ॥
यन्ति अस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥ १० ॥
यन्ति अस्य समितिम्, सामित्यो भवति, य एवं वेद ॥ ११ ॥
सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥ १२ ॥
यन्त्यस्यामन्त्रणं आमन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥ १३ ॥
अथर्ववेद ८।१०

अर्थात् "वह (लोगोंकी शक्ति)विकसित हुई और वह सभामें परिणत हुई। जो यह जानता है, वह सभाके योग्य होता है और उसकी लोग सभामें जाते हैं। वह विकसित हुई और समितिमें परिणत हुई। जो यह जानता है, वह समितिके योग्य होता है और उसके लोग समितिमें जाते हैं। वह शक्ति फिर विकसित हुई और आमंत्रणमें परिणत हुई।

जो यह जानता है, वह आमंत्रणके योग्य होता है और उससे मंत्रणा वा परामर्श करनेके लिये लोग आते हैं।"

साधारणतः सभाका अर्थ सब लोग जानते हैं, परन्तु सभाकी परिभाषा वेदमें भी है। इस लिये उल्लिखित सभाका अर्थ समझनेके लिये हम वह नीचे उद्धृत करते हैं—

"विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।"

अथर्ववेद ७।१२।२

अर्थात् "हे सभा, तेरा नाम हम जानते हैं, (तेरा) नाम वादानुवाद है।" जहां लोग वादानुवाद कर कुछ निर्णय करें, वह सभा है। म्यूर साहबने उद्धृतांशका अर्थ इस प्रकार किया है—

Assembly, We know thy name. Thy name is conversation. (Muir.)

'सभा, हम तेरा नाम जानते हैं, तेरा नाम बातचीत है।'

ग्रिफिथ साहब इसका अर्थ करते हैं—

We know thy name, Confernce, thy name is interchange of talk. (Griffith)

'हे सभा, हम तेरा नाम जानते हैं, तेरा नाम वादानुवाद है।'

अब देखिये किस क्रमसे शक्तिका विकाश हुआ। पहले कई समाजोंके मनुष्य एकत्र हुए और सभा हुई। फिर कई-सभाओंके मेलसे समिति हुई और समितियोंके मेलसे आमन्त्रणामण्डलकी उत्पत्ति हुई। अथर्ववेदके भाषान्तरमें ग्रिफिथ साहबने सभाको "गांवके लोगोंका सङ्घ" और समितिको "जिला सभा" लिखा है। आमन्त्रणामण्डल

सब सभाओं और समितियोंसे बड़ी है। गांवकी सभामें गांववालोंके कार्यों का विचार होता है। इसी प्रकार समितिमें समस्त प्रदेशके कार्याकार्यों का विचार होता है। परन्तु "आमंत्रण" सबके मिलकर विचार करनेकी संस्थाको कहते हैं। यही राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा है। कई यूरोपियन पण्डित इसे "कांग्रेस" कहते हैं।

वैदिक मन्त्रोंमें इन सभाओंमें बैठकर विचार करनेवालेकी योग्यताका भी वर्णन है। जो मनुष्य इस राष्ट्र सङ्घटनाका इतिहास जानता है, वही राष्ट्रीय विषयोंमें मत दे सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि, सभा वा ग्रामसभा समस्त ग्राम-वासियोंके एकत्र होकर विचार करनेका स्थान है। इससे जो कोई किसी ग्रामवासीको निकालना चाहता है, वह इसमें जानेके योग्य नहीं है। क्योंकि वह दूसरेका अधिकार छीनता है। समितिमें वही जाने योग्य है, जो समझता है कि, समस्त ग्रामवासियोंके प्रतिनिधियोंकी यह प्रादेशिक संस्था है। इसी प्रकार आमंत्रणमें जाने योग्य वही व्यक्ति है, जो उसे समस्त राष्ट्रकी प्रतिनिधि सभा समझता है। इसके विपरीत समझनेवालेको इन सभाओंमें जानेकी योग्यता प्राप्त नहीं है।

विराजकता।

आर्य्य जातिमें वैदिक युगसे ही राजा शब्द प्रयुक्त होता चला आता है, इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि, इसकी सृष्टि कब हुई थी। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, मानवी सृष्टिके आरम्भसे ही राजा और प्रजाका भेद नहीं चला आता है। राजाकी उत्पत्ति राष्ट्रके बाद हुई है। एक नियामक मनुष्यके अभावमें राष्ट्रसभामें जो वादानुवाद होता था, उसके निर्णयमें बड़ी कठिनाई पड़ती थी। इसलिये राष्ट्रसभाके सदस्योंने एक मनुष्यको राष्ट्रपति बनाया। इसी राष्ट्रपतिने अपने राष्ट्रको प्रसन्न वा प्रजातिका मनोरञ्जन करनेके कारण कालान्तरमें "राजा" पदवी पायी। ईश्वरने किसीको राजा वा प्रजा नहीं बनाया।

जो विषय समझमें नहीं आता, वह वेदकी सहायतासे समझा जाता है। इसीमें वेदका वेदत्व है। प्रारम्भमें राजा न था, इस विषयमें अथर्ववेदका प्रमाण है। देखिये—

"विराड् वा इदमग्र आसीत्
तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यति।"

अथर्व० ८।१०।१

अर्थात् "प्रारम्भमें यह समस्त (जनपद) विराड् (विराट्—राजाविहीन) था। उसे देख सब लोग भयभीत हुए कि यह क्या यों ही होगा (रहेगा)।"

विराट् शब्दका निषेधार्थक अर्थ भाष्यकारोंने नहीं लिखा है। प्रायः सब भाष्यकारोंने "वि" उपसर्गका "विशेष" अर्थ करके विराट्का अर्थ विराट् पुरुष वा ईश्वर किया है। परन्तु भाष्यकारोंने अधिकतर आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थ ही किये हैं। आधिभौतिक अर्थात् प्राणीविषयक अर्थकी ओर किसीने ध्यान नहीं दिया। यहां प्राणी विषयक अर्थ ही किया गया है। क्योंकि निरुक्तका वचन है कि, वेदके अनेक अर्थ हैं। आधिभौतिक अर्थ भी उनके ही अन्तर्गत है और उससे ही उल्लिखित मन्त्रका अर्थ स्पष्ट होता है। आधि-दैविक और आध्यात्मिक अर्थोंसे इसका भाव उतना स्पष्ट नहीं होता।

ऊपर जो अर्थ किया गया है, उसका समर्थन ग्रिफिथ साहबके अर्थसे होता है। साहबने अथर्ववेदके अपने भाषा-न्तरमें इस प्रकार अर्थ किया है—

"At first, this (the society on Earth) was विराड्; that is to say, it was without a king." (वि+राड्) At birth all feared her (that is विराड्—the condition of there being no king—or the kingless nation; the thought, She will become this All, struck terror." (Griffith.)

"प्रारम्भमें यह (पृथिवीपरकी समाज) विराड् थी; अर्थात् विना राजाके थी। उत्पन्न होनेपर सब उसको

(अर्थात् विराड्—राजा न होनेकी अवस्थाको--वा राजविहीन राष्ट्रको) देख इस विचारसे भीत हुए कि, यह (समाज) ऐसो ही रहेगो ।”

हमारे देशके साधारण लोगोंका विश्वास है कि, ईश्वरने एक मनुष्यको वंशपरम्पराके लिये राजा बना दिया है। पर यह भ्रमसमूलक है, क्योंकि एक तो इतिहासके विरुद्ध है, दूसरे वेदानुकूल नहीं है। यदि ईश्वरने एक मनुष्यको परम्पराके लिये राजा बना दिया होता, तो आजतक संसारके देशोंके राज्य एक ही वंशमें चले आते, पर ऐसा किसी देशमें नहीं है। उक्त विश्वाससे संस्कृतके अच्छे पण्डित भी नहीं बचे हैं। हमने कितने ही विद्वानोंसे बातचीत करके जाना है कि, वे सृष्टिके आरम्भसे ही राजाकी उत्पत्ति मान रहे हैं। परन्तु यह कल्पना वेद और पुराण दोनोंके प्रतिकूल है। जो वैदिक मंत्र ऊपर उद्धृत किया गया है उसीके आधारपर कदाचित् महाभारतके निम्नलिखित श्लोक रचे गये हैं ;—

भीष्मउवाच ।

नियतस्त्वं नरव्याघ्र शृणु सर्वमशेषतः ।
यथा राज्यं समुत्पन्नमादौ कृतयुगेऽभवत् ॥ १३ ॥
नैवं राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दंडो न दंडिकः ।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्तिस्म परस्परम् ॥ १४ ॥

हमने अपनी कल्पनाके अनुसार जो कुछ पहले लिखा है और जिसका आंशिक समर्थन वैदिक मंत्रसे हुआ है, वह

महाभारतके सर्वथा अनुकूल है। शान्ति पर्वमें युधिष्ठिर और भीष्मका संवाद है। युधिष्ठरने भीष्मसे पूछा है कि,हाथ, पांव, कान, नाक, भुजा और गर्दन सब मनुष्योंके हैं, सब समान भावसे सुख दुःख भोगते हैं, पर एक मनुष्यमें ऐसी क्या विशेषता है जिससे वह सबपर आधिपत्य करता है, इत्यादि। इसके उत्तरमें भीष्म पितामह कहते हैं,—"हे नरव्याघ्र, वह सब सुनो जिस प्रकार सत्ययुगके प्रारम्भमें राज्य उत्पन्न हुआ। पहले न राज्य था और न राजा, न दंड था और न दंड देनेवाला ही। धर्मसे सब प्रजा परस्परकी रक्षा करती थी।" भीष्मके इस कथनसे उपर्युक्त सब बातोंका समर्थन हो जाता है। अवश्यही महाभारत पढ़नेके समय अन्य विषयोंपर पंडितोंका जैसा ध्यान रहता है वैसा इसपर नहीं रहता। यही कारण है कि, वे राजाको अनादि मानते हैं।

राजाकी उत्पत्ति।

राजाकी उत्पत्तिके विषयमें भी भिन्न भिन्न प्रवाद इस देशमें प्रचलित हैं। अराजकता वा विराजकताका वर्णन महाभारत-में भी है। परन्तु राजाकी उत्पत्तिके विषयमें साधारण योग्य-ताके लोगोंको महाभारत और वेदोंमें सामान्य मतभेद जान पड़ता है। महाभारतके शान्ति पर्वकी ५८वें अध्यायमें राजाकी उत्पत्तिके विषयमें जो आख्यायिका लिखी है उसका आशय इस प्रकार है ;—

"जिस समय राजा न था, उस समय पहले तो लोग परस्पर-की सहायतासे समाजकी रक्षा करते थे। पर नियामकके अभावके कारण निश्चित नियमोंका पालन न हो सका। लोग विचारशून्य हो कर्त्तव्य भूलकर वेदोंसे विमुख हुए। वेदविहित धर्मके लुप्त होनेसे देवता भीत हुए और ब्रह्माकी शरणमें जाकर बोले, "हे पितामह, ब्राह्मण और वेदोंके लुप्त होनेसे यज्ञादि बन्द हो गये, अब हम भी मर्त्यलोकके मनुष्योंके समान ही हो रहे हैं। हमारी रक्षा कीजिये।" ब्रह्माने उन देवताओंको अभय देकर कहा कि, "तुम्हारे कल्याणका यत्न किया जायगा।" अनन्तर एक लाख अध्यायोंका शास्त्र बना-कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका वर्णन किया। यही ब्रह्माका बनाया नीतिशास्त्र है। इसीको दण्डनीति भी कहते हैं। उमापति महादेवने मनुष्योंकी आयु इसके अध्ययनके लिये पर्याप्त

न समझ इसे संक्षिप्त कर दस हजार अध्यायोंमें वर्णित किया, इस लिये विशालाचकृत ग्रन्थ होनेके कारण इसका नाम वैशालाच हुआ। फिर इन्द्रने इसे भी संक्षेप करके ५,००० अध्यायोंमें वर्णन किया। इस कारण इसका नाम बाहुदन्तन हुआ। शुक्राचार्यने इसे भी संक्षिप्त किया और उनका १,०० अध्यायवाला ग्रन्थ शुक्रनीति कहलाया। इसके उपरान्त देवताओंने प्रजापति विष्णु भगवान्से प्रार्थना की कि, ऐसे पुरुषको नियुक्त कीजिये जो सबपर प्रभुता कर सके।

"इस प्रार्थनाको सुन विष्णुने तैजस और विरजा नामके दो मानस पुत्र उत्पन्न किये। विरजा संन्यासी हो गया; उसका पुत्र कीर्त्तिमान् भी मर गया। कीर्त्तिमान्का पुत्र कर्दम तपस्वी हो गया। इसका पुत्र अनङ्ग बड़ा नीतिज्ञ हुआ और प्रजाकी रक्षा करने लगा। अनङ्गका पुत्र अतिबल इन्द्रिय-परायण हुआ और मृत्युकी सुनीथा नामकी कन्यासे उसका पुत्र वेन हुआ। वेन अधर्माचारी हुआ, इस लिये ब्रह्मवादी ऋषियोंने उसे मंत्रपूरित कुशोंसे मार डाला। अनन्तर ऋषिओं-ने वेनकी जांघ मथी, तो लाल आंखोंवाला एक कुरूप पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसे "ऋषियोंने निषीद" कहकर पतित बनाया। इसके पुत्र "निषाद" कहाये। ये वन पर्वतोंमें जा बसे। इसके बाद ऋषियोंने वेनका दाहिना हाथ मथा। इससे वेदवेदान्त और धनुर्वेदका ज्ञाता, कवच-धारी धनुषबाणसे युक्त इन्द्रके समान मनुष्य उत्पन्न हुआ।

दूसने हाथ जोड़कर ऋषियोंसे पूछा कि, मुझे कौन काम करना पड़ेगा। आप जो आज्ञा देगें, वही मैं करूंगा। देवताओं और ऋषियोंने कहा—"तुम नियमपूर्वक निर्भय चित्त-से धर्मयुक्त कार्योंका आचारण करो। तुम काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, प्रिय और अप्रियका विचार न करके सबसे समान व्यवहार करना, जो कोई धर्मसे विचलित हो, तुम धर्मकी ओर दृष्टि रखकर उसे दंड देना। हे शत्रुतापन! तुम मन और वचनसे ऐसी प्रतिज्ञा करो कि, भूमिपरके प्राणियोंको ब्रह्मस्वरूप जानकर उनका पालन करूंगा। दण्डनीतिके अनुसार जो धर्म कहे गये हैं, उनका मैं नियमा-नुकूल आचरण करूंगा।' इसके अनन्तर इन्द्रादि देवताओं, विष्णु और ब्राह्मणोंने पृथुका अभिषेक किया। पृथुने भूलोक में धर्म स्थापित करके प्रजाका मनोरञ्जन किया, उसी समयसे पृथ्वीपर 'राजा' शब्द प्रचलित हुआ।

एक अराजक देशमें राजाकी किस प्रकार सृष्टि हुई थी इसका वर्णन शान्ति पर्वके ६७ वें अध्यायमें है। इस अध्याय से कतिपय श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

"अराजकाः प्रजाः पूर्वं विनेशुरिति नः श्रुतम्।
परस्परं भक्षयन्तो मत्स्या इव जले कृशान् ॥१७॥
समेत्य तास्ततश्चक्रुः समयानिति नः श्रुतम्।
वाक्शूरो दण्डपरुषो यश्च स्यात् पारजायिकः ॥१८॥
यः परस्वमथादद्यात्त्याज्या नस्तादृशा इति।

विश्वार्थञ्च सर्वेषां वर्णानामविशेषतः ।
तास्तथासमयं कृत्वा समयेनावतस्थिरे ॥ १९ ॥
सहिता स्तास्तदा जग्मु रसुखार्त्ताः पितामहम् ।
अनीश्वरा विनश्यामो भगवन्नीश्वरं दिश ॥ २० ॥
यं पूजयेम सम्भूय यश्च नः प्रतिपालयेत् ।
ततो मनुं व्यादिदेश मनुर्नाभिननन्द ताः ॥२१॥

मनुरुवाच ।

बिभेमि कर्मणः पापाद्राज्यं हि भृशदुस्तरम् ।
विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा ॥२२॥

भीष्म उवाच ।

तमब्रुवन् प्रजा मा भैः कर्त्तॄनेनो गमिष्यति ।
पशूनामधि पञ्चाशद्धिरण्यस्य तथैवच ॥२३॥
धान्यस्य दशमं भागं दास्यामः कोषवर्द्धनम् ।
कन्यां शुल्के चारुरूपां विवाहेषु द्यतासुच ॥२४॥
सुखेन शस्त्रपत्रेण ये मनुष्याः प्रधानतः ।
भवन्तं तेऽनुयास्यन्ति महेन्द्रमिव देवताः ॥२५॥
स त्वं जातबलो राजा दुष्प्रधर्षः प्रतापवान् ।
सुखे धास्यसि नः सर्वान् कुवेर इव नैऋतान् ॥२६॥
यञ्च धर्मं चरिष्यन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः ।
चतुर्थं तस्य धर्मस्य त्वत्संस्थं वै भविष्यति ॥२७॥
तेन धर्मेण महता सुखं लब्धेन भावितः ।

पाह्यस्मान् सर्वतो राजन् देवानिव शतक्रतुः ॥२८॥

विजयाय हि निर्याहि प्रतपन रश्मिवानिव ।
मानं विधम शत्रूणां जयोऽस्तु तव सर्वदा ॥२८॥

इसमें युधिष्ठिर और भीष्मका संवाद है । युधिष्ठिरके प्रश्नके उत्तरमें भीष्मने राष्ट्रके लिये राजाकी आवश्यकता सिद्ध करनेके अभिप्रायसे प्राचीन सुना हुआ इतिहास कहा है। भीष्म कहते हैं,—हमने सुना है कि, अराजक राज्यकी प्रजा वैसेही नष्ट हुई थी, जैसे जलमें बड़ी मछली छोटीको खा जाती है। जब इस प्रकार लोगोंका नाश होने लगा,तब सबने मिलकर निश्चय किया कि, हम लोगोंमें जो कटुभाषी, उद्दण्ड, परस्त्रीगामी और परधनहारी होगा, वह त्याज्य वा बहिष्कृत समझा जायगा। इस प्रकार सब वर्णोंमें विश्वास स्थापन करनेके लिये ऐसी प्रतिज्ञा करके वे ब्रह्माके पास जाकर बोले कि, हम लोगोंमें कोई राजा न रहनेसे हमारा दुख बढ़ रहा है, इस लिये आप हमें राजा दीजिये जिसकी हम पूजा करें और जो हमारा प्रतिपालन करे। इसपर उन्होंने मनुको आज्ञा दी और सब लोगोंने मनुका अभिनन्दन किया। मनुने कहा कि, मैं पापसे डरता हूं और राजकाज बड़ा कठिन है, विशेषकर मनुष्योंमें जो नित्य मिथ्याचार करते हैं। भीष्म बोले अनन्तर प्रजाने उनसे कहा कि, आप न डरिये, पापाचरण करनेवालाही उसका फल भोगेगा। हमलोग आपकी कोषवृद्धिके लिये आपको अपने पशु और धान्यका दसवां भाग देंगे। जिस कन्याका सबसे अधिक यौतुक निर्दिष्ट होगा, उस सुन्दरीका आपसे विवाह

कर दिया जायगा। जैसे इन्द्रके पीछे सब देवता चलते हैं, वैसे ही उत्तम वाहनोंपर चढ़े हुए शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पुरुष आपके पीछे चलेंगे; जैसे कुबेर यक्षोंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही वशी, प्रतापी और दुराधर्ष आप हमारी रक्षा करें। राजासे रक्षित होकर प्रजा जो धर्माचरण करेगी, उसका चतुर्थांश फल आपको मिलेगा। उसी धर्मसे बलवान् होकर आप हम लोगोंकी रक्षा करें, जैसे इन्द्र देवताओंकी करते हैं। आप सूर्यकी भांति शत्रुओंको तपाते हुए विजयके निमित्त यात्रा कीजिये। और शत्रुओंका अभिमान नष्ट कीजिये। आपकी सदा जय हो।

यह तो महाभारतके दो स्थलोंसे राजाकी उत्पत्तिका वर्णन उद्धृत किया गया। अब इस विषयमें मनु महाराज क्या कहते हैं इसे भी जान लेना चाहिये। परन्तु इसके पहले यह बता देना भी आवश्यक है कि, आपस्तम्ब, आश्वलायन, बौधायन आदि धर्मसूत्रोंकी भांति मानव धर्मसूत्र भी बने थे। मनुके नामसे छन्दोबद्ध मनुस्मृति इन सूत्रोंके आधारपर ही बनी है। इसके प्रमाणमें जर्मनीके पुरातत्वान्वेषी डाक्टर बुहलरने वाशिष्ट धर्मसूत्रोंके चौथे अध्यायके ५ से ८ सूत्रतक उद्धृत किये हैं। वाशिष्ट सूत्रोंमें ये सूत्र मानव धर्म सूत्रोंसे लिये गये हैं। ८ वें सूत्रके बाद "इति" रहनेके कारण डाक्टर बुहलर कहते हैं कि, ये चारों मानव सूत्र हैं। जो हो, अब इन धर्मसूत्रोंका कहीं पता नहीं मिलता। इस

लिये मनु भगवान्‌का मत जाननेके लिये हमारे पास मनु-स्मृतिके सिवा कोई साधन नहीं है।

मनुस्मृतिके सातवें अध्यायमें राजाकी उत्पत्तिका वर्णन इस प्रकार पाया जाता है,—

"अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥३॥
इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥४॥

अर्थात् जब इस अराजक लोकमें चारों ओर भयसे सब (लोग) भागने लगे, तब सबकी रक्षाके लिये ईश्वरने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेरके अंश लेकर राजाकी सृष्टि की।

महाभारतके पहले वर्णनसे तो इतना ही जाना जाता है कि, देवताओंने विष्णु भगवान्‌से मनुष्योंके शासनके लिये राजा मांगा और उन्होंने तैजस और विरजा नामके दो मानस पुत्र उत्पन्न किये। परन्तु दूसरे अवतरणमें स्पष्ट ही लिखा है कि, ब्रह्माने मनुको मनुष्योंपर राज करनेकी आज्ञा दी। मनु-स्मृति भी कहती है कि, परमात्माने (आठ देवताओंके अंश लेकर) राजाकी सृष्टि की। महाभारतके पहले वर्णनमें ईश्वरकी और दूसरेमें ब्रह्माके हस्तक्षेपके साथ ही यह भी है कि, पृथु प्रजाकी पूर्ण अनुकूलता पाकर और उसकी सब बात स्वीकार

कर शासन करना प्रारम्भ किया था, परन्तु मनुस्मृतिमें इस विषयकी चर्चातक नहीं है।

अब देखना चाहिये कि, वेदोंमें भी राजाकी उत्पत्तिके विषयमें कुछ लिखा है या नहीं और यदि लिखा है, तो महाभारत और मनुस्मृतिसे उसका सामाञ्जस्य होता है या नहीं। अथर्ववेदमें इस विषयकी चर्चा अधिक है, इसलिये पहले यही देखना चाहिये। इसके तीसरे काण्डमें यह प्रार्थना है—

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपास्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो
जनान् ॥३।५।७।

इसका भावार्थ है "राजा (माण्डलिक राजा), राजा बनाने वाले (लोग वा प्रजाजन), सूत वा सेनानायक और अन्य सब लोगोंको तू मेरे अनुकूल कर।' इस मन्त्रमें "राजकृतः" पद आया है। इसका अर्थ "राजा करनेवाले" है। ग्रिफिथ साहबने भी "राजानः" और "राजकृतः" पदोंका अर्थ Kings and Kingmakers किया है। इससे यह भाव निकलता है कि, वैदिक युगमें प्रजा अपनी इच्छासे किसी एक मनुष्यको राजा बनाती थी। मातृगर्भसे ही कोई राजा बना बनाया नहीं चला आता था।

साधारण लोग समझेंगे कि, मनुस्मृति और महाभारतमें जो वर्णन है, वह वेदके प्रतिकूल है। पर यद्यपि ऐसा होने पर भी वेदका ही प्रमाण माना जायगा, क्योंकि श्रुति और

स्मृतिका विरोध जहां दिखायी दे, वहां श्रुतिकी ही बात मान्य है, तथापि हमारी समझसे मनुस्मृति और वेदके बचनों में कुछ भी भेद नहीं है। गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने अपने श्रीमुखसे कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परन्तु इस नियमके अनुसार ईश्वर सदा अवतार नहीं लेता। इस लिये क्या उक्त वचन मिथ्या ठहरेगा? नहीं, मिथ्या नहीं हो सकता। संसारके सब देशोंमें लोकसभाका निर्णय ईश्वरीय निर्णय माना जाता है। शतपथ ब्राह्मणके अभिषेक प्रकरणमें मनुष्य प्रजापति वा ईश्वर माने गये हैं। पाश्चात्य देशोंमें Vox populi vox dei अर्थात् "प्रजाका मत ईश्वरका मत" समझा जाता है। अपने देशमें "पञ्च परमेश्वर" वा "पञ्चोंमें परमेश्वर बोले" आदि वाक्य पञ्चायतके न्यायकी उत्तमता सिद्ध कर रहे हैं। वेदोंमें भी लोकसभाकी बड़ी प्रशंसा है। इस लिये यह निश्चय होता है कि, मनुस्मृतिमें ईश्वरद्वारा आठ देवताओंके अंशोंसे राजाकी सृष्टिकी जो बात लिखी है, वह आलङ्कारिक है। मनुस्मृतिके इस प्रकरणके ईश्वरका वह अर्थ ही नहीं है, जो साधारणतः लोग समझा करते हैं।

मनुस्मृतिके नवें अध्यायमें भी यह अलङ्कार समझा दिया गया है। यथा—

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्यच ।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजो व्रतं नृपश्चरेत् ॥
वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ।
तथाभिवर्षेत् स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥
अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ।
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥
प्रविश्य सर्व भूतानि यथा चरति मारुतः ।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥
यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥
वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभि दृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ।
तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥
प्रतापयुक्त स्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु ।
दुष्ट सामन्त हिंस्रश्च तदाग्नेय व्रतं स्मृतम् ॥
यथा सर्वाणि भूतानि धारा धारयते समम् ।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिव व्रतम् ॥

अर्थात्—इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्र, अग्नि और पृथिवी की सामर्थ्य के कर्म राजा करे। जिस प्रकार चार महीने इन्द्र पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रका काम करता राजा राष्ट्रमें प्रजाके अभिलषित पदार्थों की वर्षा करे। आठ महीने जैसे

सूर्य अपनी किरणोंसे जल खींचते हैं, वैसे ही राष्ट्रसे राजा कर ले, यह सूर्यका काम है। जैसे सब प्राणियोंमें प्रवेश करके वायु घूमतो है, वैसे ही दूतों द्वारा राजा सबमें प्रवेश करे, यह वायुका काम है। जिस प्रकार यम यथासमय मित्र शत्रुको मारता है, उसी प्रकार अपराधके समय राजा प्रजाको दण्ड दे यह यमका काम है। जैसे वरुणके पाशोंसे बंधा हुआ यह जगत् दिखायी देता है, वैसे ही राजा पापियोंको बांधे यह वरुणका काम है। पापियोंके लिये राजा सदा अग्निके समान जाज्वल्यमान रहे और दुष्ट सामन्तोंको भी दमन किया करे, यह अग्निका काम है। जिस प्रकार सब प्राणियोंको पृथिवी समान भावसे धारण करती है, उसी प्रकार राजा सब प्राणियोंका पालन करे, यह पृथिवीका काम है।

अब इसके बतानेका प्रयोजन नहीं रहा कि, मनुस्मृतिमें ईश्वरद्वारा राजाकी सृष्टि क्यों लिखी गयी है। क्योंकि ऊपरके अवतरणोंसे स्पष्ट होता है कि, राजामें उक्त देवताओंके अंशोंको, इसी लिये बात कही जाती है कि, उनके काम उसे करने पड़ते हैं। मनुष्योंद्वारा यदि मनुजी राजाको प्रजासे निर्वाचित कराते तो देवताओंकी उपमा न देते सकते। क्योंकि देवताके अंश लेकर मनुष्य किसीकी सृष्टि नहीं कर सकता।

राजाका निर्वाचन।

पहले जो कुछ लिखा गया है, उससे यह तो सिद्ध हो ही गया कि, राजाकी उत्पत्तिसे ईश्वरका कोई सम्बन्ध नहीं होता था ; मनुष्य ही व्यक्ति विशेषको राजा बनाते थे। अब यह दिखाना है कि, राजा प्रजाद्वारा निर्वाचित्त होता था और उसकी सत्ता नियंत्रित होती थी।

प्राचीन कालमें भारतमें राजाका निर्वाचन होता था। जिस मनुष्यमें शासकोचित गुण पाये जाते थे, वह राजा निर्वाचित किया जाता था। जिस समय राजाका अभिषेक होता है, उस समय जो मंत्र पढ़े जाते हैं, उनसे जाना जाता है कि, प्रजा राजाको निर्वाचित करती थी।

आत्वा हार्षमन्तर्भूर्ध्रुवस्तिष्ठा विचाचलत्।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मात्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत॥

अथर्ववेद ६।८७।१

यह मंत्र अथर्ववेदके छठे कांडसे लिया गया है। इसका अर्थ है "हे राजा तुझे हम लाये हैं, आ, स्थिर रह, चञ्चल न हो, सब प्रजा तेरी इच्छा करे, तुझसे राज्य भ्रष्ट न हो।" मि० ग्रिफिथ इसका अर्थ इस प्रकार करते हैं—

Here art thou, I have chosen thee : stand steadfast and immovable et all the classes desire thee. Let not thy Kingship fall away.

अर्थात "यहां तू है ; मैंने तुझे चुना है ; स्थिरता और

दृढ़तापूर्वक खड़ा रह ; सब श्रेणियोंके लोग तेरी इच्छा करें। तेरा राजत्व तुझसे भ्रष्ट न हो।

इस मंत्रसे स्पष्ट होता है कि, प्रजाछन्दसे एक मनुष्य राजा चुना जाता था। यदि ऐसा न होता तो "तुझे हम लाये हैं" अथवा मि० ग्रिफिथके कथनानुसार "तुझे मैंने चुना है" इस वाक्यकी आवश्यकता नहीं थी। "सब प्रजा तेरी इच्छा करे" इस वाक्यसे सिद्ध होता है कि, सब प्रजाकी इच्छाके विरुद्ध कोई राजा राज नहीं कर सकता था। और "तुझसे राज्य भ्रष्ट न हो" वाक्य डङ्केकी चोट कह रहा है कि, नियम विरुद्ध चलनेसे पदच्युत होना पड़ेगा।

राजाका क्या प्रयोजन है और वह क्यों निर्वाचित किया जाता था, यदि कोई महाशय यह शङ्का करें तो अथर्ववेद उनकी शङ्काका समाधान कर देता है।

> त्वां विशो वृणतां राज्याय
>
> त्वामिमाः प्रदिशः पञ्चदेवीः।
>
> वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व
>
> ततो न उग्रो विभजा वसूनि॥
>
> अथर्ववेद ३।४।२

यह अथर्ववेदके तीसरे कांडका मंत्र है। इसका अर्थ है "हे राजा! राज्यके काम चलानेके लिये प्रजा तुझे निर्वाचित करे। इन पांचो दिशाओंमें प्रजा तेरी इच्छा करे। राष्ट्रके श्रेष्ठ भागका (राजसिंहासनका) आश्रय ले और

अनन्तर (प्रजामें) द्रव्य बांट।" इस मंत्रकी वाक्ययोजना विचार करने योग्य है। इसके प्रारम्भमें ही कहा गया है कि, राजाके बिना राज्यके काम नहीं चल सकते; इस लिये लोग तुझे राजा बनावें। इसके आगे कहा गया है, पांचों दिशाओंमें प्रजा तेरी इच्छा करे। इससे यह तात्पर्य निकला कि, तू लोकप्रिय हो, अप्रिय न हो। अर्थात् अप्रिय होनेसे पदच्युत होगा। अन्तमें कहा गया है कि, सिंहासनपर बैठ कर प्रजाको समृद्ध कर। राजाके निर्वाचनके विषयमें दो मंत्र दिये जा चुके हैं। अब अथर्ववेदके ६ ठे कांडसे एक मंत्र उद्धृत कर दिखाते हैं कि, राजासे प्रजा किन किन बातोंकी आशा रखती थी।

ध्रुवो च्युतः प्रमृणीहि शत्रू-
ञ्छत्रूयतो धरान् पादयस्व।
सर्वा दिशः संमनसः सध्राची
ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह॥

अथर्ववेद ६।८८।३

अर्थात् "हे राजा! तू स्थिर हो, पदच्युत न हो, शत्रु का संहार कर, शत्रुओंके समान आचरण करनेवालोंको नीचे गिरा, सब दिशाओंमें लोग एकता और मेलसे काम करनेवाले हों और अपनी स्थिरताके लिये (काम करनेवाली) सभा स्थापित कर।" यह भी राज्याभिषेकका मंत्र है। इसमें भी राजाकी स्थिरता और पदच्युत न होनेकी बात कही गयी

है। निर्वाचनके समय राजासे प्रजा यह आशा करती थी कि, वह शत्रुओंका नाश करे, और जो लोग शत्रुवत् आचरण करें, उन्हें दण्ड दे और लोकमत जाननेके लिये सभा स्थापन करे। इस मंत्रका भावार्थ यह है कि, राजा शत्रुओंका नाश करके लोकमतके अनुसार राजकाज चलावे।

अथर्ववेदके तीसरे कांडके एक मंत्रसे जाना जाता है कि, पदच्युत राजाके पुनर्निर्वाचनकी व्यवस्था भी है और राष्ट्रसभाका बहुमत होनेपर पदच्युत राजा फिर सिंहासनपर बैठ सकता है। यदि राजाका निर्वाचन न हुआ करता और प्रजाकी अनुकूलता विना ही कोई राजा हो सकता, तो इस मंत्रकी कोई आवश्यकता न थी। उक्त मंत्र इस प्रकार है;—

ह्वयन्तु त्वां प्रतिजनाः प्रतिमित्रा अवृषत।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्ते विशि क्षेममदीधरन्॥

अथर्ववेद ३।४।६॥

इसका अर्थ है, "(हे पुनः निर्वाचित राजा!) तेरे विरुद्ध पक्षके लोग भी तेरी सहायता करें, तेरे मित्रोंने (तुझे) निर्वाचित किया है, इन्द्र, अग्नि और इतर देवताओंने तुझे घर अर्थात् प्रजामें ही रखा है।" ग्रिफिथ साहबने इस मंत्रके आधे भागका यह अर्थ किया है कि, "तेरे प्रतिपक्षी तुझे फिर स्वीकार करें, तेरे मित्रोंने तुझे फिर निर्वाचित किया है।"

इस मंत्रके अर्थपर विचार करनेसे जाना जाता है कि, जिस समय इस मन्त्रका आविर्भाव हुआ था, उस समय राष्ट्रीय महासभाके बहुमतसे राजाका निर्वाचन होता था; प्रजाके मत और अपनी प्रतिज्ञाके विरुद्ध आचरण करनेवाला राजा शीघ्र पदच्युत होता था और यदि वह अपना आचरण ठीक रखनेकी प्रतिज्ञा करता था और राष्ट्रीय महासभाके बहुसंख्यक सभासदोंको उसकी बातपर विश्वास होता था, तो ये उसे फिर सिंहासन पर बिठा देते थे और कहते थे कि "तेरे प्रतिपक्षी तेरी सहायता करें" अर्थात् तू अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करके दिखा और अपने विरोधियोंकी अनुकूलता प्राप्त कर। इस मंत्रपर टिप्पणी करते हुए ग्रिफिथ साहब लिखते हैं ;—

Other passages also in the Atharva Veda show that Kingship was sometimes Elective.

अर्थात् अथर्ववेदके अन्य मंत्रोंसे भी जाना जाता है कि, कभी कभी राजा निर्वाचित होता था।

यहांतक तो केवल संहिताके प्रमाणोंसे यह दिखाया गया है कि, राजाके निर्वाचनकी बात वेदोंमें स्पष्ट रूपसे लिखी है ; अब ब्राह्मण ग्रन्थोंके प्रमाण देकर यह दिखाना है कि, राजाको मनमानी घरजानी करनेका अधिकार नहीं है। राज्याभिषेकके समय राजासे कह दिया जाता है कि, तुम किस लिये राजा बनाये जाते हो। शतपथ ब्राह्मणके अभिषेक प्रकरणमें ये बातें विस्तारपूर्वक लिखी हैं। यहां हम उससे कुछ आवश्यक अंश ही उद्धृत करते हैं।

"इयं ते राडिति राज्यमेवास्मिन्नेतद्दधात्यथैनं मासादयति यन्तासि यमन इति यन्तारमेवैनमेतद्यमनमासां प्रजानां करोति ध्रुवोऽसि धरुण इति ध्रुवमेवैनमेतद्धरुणमस्मिंल्लोके करोति कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वेति साधवे त्वेत्येवै तदाह।" शतपथ, काण्ड ५ अ० २, ब्रा० १, प्र० २५।

मैक्समूलर सम्पादित अङ्गरेजी भाषान्तरमें इसका अर्थ इस प्रकार है—

25. He spreads it with 'This is thy Kingship!' whereby he endows him with royal power. He then makes him sit down with 'Thou art the ruler, the ruling lord!' whereby he makes him the ruler, ruling over those subjects of his;—'Thou art firm and steadfast!' whereby he makes him firm and steadfast in this world;—'Thee for the tilling!'—'Thee for peaceful dwelling!—'Thee for wealth!'—'Thee for thrift!' whereby he means to say (here I seat) thee for the welfare (of the people).

" 'यह तेरा राज्य है' यह कहकर वह उसे फैलाता है, जिसके द्वारा वह उसे राजशक्ति देता है। फिर 'तू शासक है, शासन करनेवाला है' कहकर वह उसे बैठाता है, जिससे वह उसे शासक, अपनी प्रजापर शासन करनेवाला बनाता है। 'तू दृढ़ और स्थिर है' इससे वह उसे इस लोकमें दृढ़ और स्थिर बनाता है। 'तुझे खेतीके लिये', 'तुझे शान्ति पूर्वक रहनेके लिये', 'तुझे धनके लिये', 'तुझे समृद्धिके लिये' जिनसे उसका प्रयोजन यह है कि, तुझे (प्रजाकी) भलाईके लिये यहां मैं बैठाता हूं।"

अध्वर्यु राजासे कहता है, "यह राज्य तेरा है।" इस कथनसे प्रजाजनोंका प्रतिनिधि अध्वर्यु उसे (राजा होनेवाले व्यक्तिको) राजशक्ति देता है। फिर कहता है, "तू शासक है और सबको नियमानुकूल चलानेवाला है।" इससे राजा होनेवाले व्यक्तिको शासन करने और सबको नियमसे चलनेके लिये बाध्य करनेकी शक्ति दी जाती है। अनन्तर अध्वर्यु राजासे कहता है, 'तू ध्रुव और धरुण है।" इससे अध्वर्यु संसारमें प्रसिद्ध करता है कि, यह राजा ध्रुव अर्थात् अचल और धरुण अर्थात् दायित्व स्वीकार करनेवाला है। प्रयोजन यह कि, वह स्थिर होकर अपने कार्यका दायित्व स्वीकार करता है। अन्तमें अध्वर्यु राजाको बताता है कि, राज्य तुझे किस लिये दिया जाता है, "खेतीके लिये, कल्याणके लिये, समृद्धिके लिये, पालनपोषणके लिये, साधुओंके लिये।" अध्वर्युके इस कथनका तात्पर्य यह है कि, हमलोग इस सिंहासनपर इस लिये तुझे बैठाते हैं कि, तू खेतीकी उन्नति कर, प्रजाको प्रसन्न कर, धनकी वृद्धि कर, प्रजाका पालन कर और साधुजनोंकी रक्षा करके उनकी संख्या बढ़ा। अर्थात् तुझे राजा बनानेका मुख्य उद्देश्य प्रजाकी भलाई है। जो राजा इन आशाओंको पूर्ण नहीं कर सकता था, वह अयोग्य समझा जाता था।

राजाके निर्वाचन वा नियुक्त करनेके कारणोंका उल्लेख तो हो चुका, अब यह बताया जायगा कि, बिना सब प्रजाकी

स्वीकृतिके कोई राजा नहीं निर्वाचित हो सकता था। इसका प्रमाण भी शतपथ ब्राह्मणके उसी प्रकरणसे मिलता है पाठकोंकी अवगतिके लिये उस प्रकरणका कुछ और अंश नीचे उद्धृत किया जाता है,—

अथैन माविदो वाचयति। आविर्मर्या इत्यनिरुक्तं प्रजापतिर्वा ऽअनिरुक्तस्तदेनं प्रजापतय ऽआवेदयति सोऽस्मै सव मनुमन्यते तेनानुमतः सूयते ॥ ३१ ॥

आवित्तो ऽअग्निर्गृहपतिरिति। ब्रह्म वा अग्निस्तदेनं ब्रह्मण ऽआवेदयति तदस्मै सव मनुमन्यते तेनानुमतः सूयते ॥ ३२ ॥

आवित्तो ऽइन्द्रो वृद्धश्रवा इति। क्षत्रं वा ऽइन्द्रस्तदेनं क्षत्रायावेदयति तदस्मै सव मनुमन्यते तेनानुमतः सूयते ॥ ३३ ॥

आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रताविति। प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ तदेनं प्राणोदानाभ्या मावेदयति तावस्मै सव मनुमन्येते ताभ्या मनुमतः सूयते ॥ ३४ ॥

आवित्तः पूषा विश्ववेदा इति। पशवो वै पूषा तदेनं पशुभ्य आवेदयति तेऽस्मै सव मनुमन्यन्ते तैरनुमतः सूयते ॥ ३५ ॥

आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवाविति। तदेन माभ्यां द्यावा पृथिवीभ्या मावेदयति ते ऽअस्मै सव मनुमन्येते ताभ्या-मनुमतः सूयते ॥ ३६ ॥

आवित्तादिति रुद्रमैति। इयं वै पृथिव्यदितिस्तदेन मस्यै पृथिव्या ऽआवेदयति सास्मै सव मनुमन्यते तयानुमतः सूयते तद्याभ्य एवैन मेतद्देवताभ्य आवेदयति ता यस्मै सव मनुमन्वन्ते ताभिरनुमतः सूयते॥ ३७॥ २॥

सायणाचार्यने इसपर इस प्रकार भाष्य किया है ;—

"अब आवित्त पदयुक्त सात मंत्र वह पढ़ाता है। जिन मन्त्रोंसे देवताओंको यजमानकी सूचना दी जाती है, वे आविद् मंत्र हैं। 'हे मरणयोग्य मनुष्यो! ज्ञात हो।' इससे किस देवताको यजमानकी सूचना दी जाती है, इस शंकाके समाधानके लिये देवता दिखाते हैं—'प्रजापति।' प्रजापति निश्चय ही वर्णनानीत है। इस लिये इस मंत्रसे अकथित प्रजापतिको यजमानकी सूचना दी जाती है। वह प्रजापति इसके लिये अभिषेककी अनुमति देता है, उस प्रजापतिसे अनुमोदित वह अभिषिक्त होता है।"

"सूचित किया गया गृहपतिगुणक अग्नि। (अग्नि ब्राह्मण है, इससे इस मंत्रसे ब्राह्मणको सूचना दी जाती है। उसके अनुमोदनपर उसका अभिषेक होता है)"

"सूचित किया गया बहुत अन्नवाला इन्द्र। (इन्द्र क्षत्रिय है। इस लिये उस मंत्रसे क्षत्रियको सूचना दी जाती है। उसके अनुमोदनपर उसका अभिषेक होता है।)"

"सूचित किये गये व्रतोंके धारण करनेवाले मित्र और वरुण। (मित्र और वरुण प्राण और उदान वायु हैं। इस

लिये इस मंत्रसे उन्हें सूचना दी जाती है और उनका अनु-मोदित वह अभिषिक्त होता है।)

"सूचित किया गया सर्वधन पूषा। (पूषा पशु है। इस लिये इस मंत्रसे पशुओंको सूचना दी जाती है और उनके अनुमोदनपर उसका अभिषेक होता है।)

"सूचित किये गये जगत्को सुखी करनेवाले आकाश और पृथिवी। (इससे आकाश और पृथिवीको सूचना दी जाती है और उनके अनुमोदन करनेपर उसका अभिषेक होता है।)

"सूचित की गयी बहुत सुखवाली अदिति। (भूमि कोई मूर्त्ति धारणकर देवमाता अदिति कहाती है। इससे पृथिवीको सूचना दी जाती है और उसके अनुमोदनपर उसका अभिषेक होता है।) इनसे देवताओंको सूचित करता है, वे अनुमोदन करते हैं और उनके अनुमोदनपर उसका अभिषेक होता है।"

मैक्समुलर सम्पादित शतपथ ब्राह्मणके अङ्गरेजी भाषा-न्तरमें इस प्रकार अर्थ किया गया है;—

31. Thereupon he makes him pronounce the *avid* formulas. 'In sight, ye mortals!' This is mysterious, for mysterious is Pragapa ti; he thus announces him to Pragapati, and this one approves of his consecration; and approved by him he is consecrated.

32. 'Present is Agni, the houselord;'—Agni is the (brahman); he thus announces him to the priesthood; and it approves of his consecration; and approved by it he is consecrated.

33. 'Present is Indra, the farfamed;'—Indra is the nobility; he thus announces him to the nobility; and it approves of his consecration, and approved by it he is consecrated.

34. 'Present are Mitra and Varuna, the upholders of the law;'—Mitra and Varuna are the out-breathing and in-breathing, and they approve of his consecration, and approved by them he is consecrated.

35. 'Present is Pushan, the all-possessing;'—Pushan is (the lord of) cattle; he thus announces him to the cattle, and they approve of his consecration, and approved by them he is consecrated.

36. 'Present are Heaven and Earth, the all-propitions;'—he thus announces him to those two, the Heaven and the Earth, and they approve of his consecration, and approved by them he is consecrated.

37. 'Present is Aditi, of wide shelter;'—Aditi is this earth and she approves of his consecration, and approved by her he is consecrated. Thus to whatever deities he announces him, they approve of his consecration, and approved by them he is consecrated.

३१। इसपर वह उससे आविद् पदयुक्त मंत्र पढ़वाता है। 'हे मरणयोग्य मनुष्यो! नेत्रोंके सामने।' यह गुप्त है, क्योंकि प्रजापति गुप्त है, इस प्रकार वह प्रजापतिको उसकी सूचना देता है; और यह उसके अभिषेकका अनुमोदन करता है, और इसका अनुमोदित वह अभिषिक्त होता है।

३२। 'उपस्थित है अग्नि गृहपति;'—अग्नि ब्राह्मण है; इस भांति वह ब्राह्मणको उसकी सूचना देता है; और वह उसके अभिषेकका अनुमोदन करता है, और उसका अनुमोदित वह अभिषिक्त होता है।

३३। 'उपस्थित है दूरतक प्रसिद्ध इन्द्र;'—इन्द्र क्षत्रिय है; इस भांति वह क्षत्रियको उसकी सूचना देता है; और वह उसके अभिषेकका अनुमोदन करता है, और उसका अनुमोदित वह अभिषिक्त होता है।

२४। 'उपस्थित हैं मित्र और वरुण व्रतोंके धारण करनेवाले;'—मित्र और वरुण प्राणवायु और उदानवायु हैं और वे उसके अभिषेकका अनुमोदन करते हैं, और उनका अनुमोदित वह अभिषिक्त होता है।

२५। 'उपस्थित है पूषा सर्वधन;'—पूषा है पशु (-पति); इस भांति वह पशुओंको उसकी सूचना देता है और वे उसके अभिषेकका अनुमोदन करते हैं, और उनका अनुमोदित वह अभिषिक्त होता है।

२६। 'उपस्थित हैं आकाश और पृथिवी सर्वकल्याणकर;'—इस भांति वह उन दोनों आकाश और पृथिवीको उसकी सूचना देता है और वे उसके अभिषेकका अनुमोदन करते हैं, और उनका अनुमोदित वह अभिषिक्त होता है।

२७। 'उपस्थित है अदिति विशाल निवासस्थानवाली;'—अदिति यह पृथिवी है और वह उसके अभिषेकका अनुमोदन करती है, और उसका अनुमोदित वह अभिषिक्त होता है। इस प्रकार जिन सब देवताओंको वह उसकी सूचना देता है, वे उसके अभिषेकका अनुमोदन करते हैं, और उनका अनुमोदित वह अभिषिक्त होता है।

इन आविद् मंत्रोंसे जाना जाता है कि, राजाके अभिषेकके पहले मनुष्यों, अग्नि, इन्द्र, मित्रावरुण, पूषा, द्यावापृथिवी और अदितिको सूचना दी जाती और उनकी अनुमति ली जाती है। जब वे अनुमति देते हैं, तब राजाका

अभिषेक होता है। शतपथ ब्राह्मणमें कहा गया है कि, मनुष्योंको सूचना देनेका अर्थ प्रजापति वा ईश्वरको सूचना देना है। इसी प्रकार अग्निसे ब्राह्मण और इन्द्रसे क्षत्रियका ग्रहण करना चाहिये। मित्रावरुणका अर्थ प्राण और उदान वायु बताया गया है। पूषाका अर्थ पशु करना चाहिये। अदितिसे भूमिका ग्रहण बताया गया है। यद्यपि ये सब देवता सम्बन्धीय कहे जाते हैं, तथापि कभी मनुष्यसे देवता और कभी देवतासे मनुष्य, इस प्रकारका विचित्र परिवर्त्तन इनमें हुआ है। शतपथ ब्राह्मणके पहले इनका उपयोग किस प्रकार किया जाता था, यह नहीं जाना जा सकता। पर इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि, मनुष्यों, ब्राह्मणों और क्षत्रियोंको ही नहीं, बल्कि पशुओंके पालक वैश्यों तथा पृथिवी और आकाश तथा प्राण और उदान वायुको भी सूचना देने और इन सबको अनुमति लेकर अभिषेक करनेको आज्ञा है। पूषाका अर्थ पशु बताया गया है, पर हमने उसका पशुपति वा पशुपालक अर्थात् वैश्य अर्थ किया है। कोई कोई मित्रावरुणका अर्थ वैश्य और शूद्र समझते हैं, पर यह उनका भ्रम है। उस समयतक आर्य जातिमें शूद्र नहीं सम्मिलित किये गये थे। इस लिये उनका उल्लेख असम्भव है। दूसरे मित्रावरुणको शतपथ ब्राह्मण स्पष्ट ही प्राण और उदान वायु कहता है। ऐसी अवस्थामें उन्हें वैश्य और शूद्र समझना बुद्धिके विपरीत

है। आकाशके साथ पृथिवीकी सूचना दी जा चुकी, तब फिर अदितिको (पृथिवीको) सूचना देनेकी बात क्यों लिखी गयी? इसका समाधान इस प्रकार किया जाता है कि, आकाशके साथ जो पृथिवी है, वह ससागरा वसुन्धराके अर्थमें है और अदिति वही भूमि है, जिसका वह राजा बनाया जायगा। जो हो, यह स्पष्ट है कि, अभिषेकके लिये प्रजाकी अनुमति ली जाती थी और जबतक वह नहीं मिलती थी, तबतक राजाका अभिषेक नहीं होता था।

छोटे मोटे राजाओंसे किसी प्रकारकी शपथ वा प्रतिज्ञा करायी जाती थी या नहीं इसका पता तो नहीं मिला, पर जो बड़े सम्राट् हुआ करते थे, उनसे शपथ कराना आवश्यक समझा था। ऐतरेय ब्राह्मणकी अष्टम पञ्चिकाके चतुर्थ अध्यायके प्रथम खंडमें ऐन्द्र महाभिषेकमें शपथ करने करानेकी बात स्पष्ट लिखी मिलती है।

"स य इच्छेदेवंवित्क्षत्रिय मयं सर्वा जितीर्जयेतायं सर्वांल्लोकान् विन्देतायं सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्य मतिष्ठां परमतां गच्छेत साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं मह-राज्य माधिपत्यमयं स समन्तपर्यायी स्यात्सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादा परार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति तमे-तेनैन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियं शापयित्वा ऽभिषिञ्चेद् याञ्च रात्री मजायेथा याञ्च प्रेतासि तदुभय मन्तरेणेष्टापूर्तं ते लोकं सुकृत मायुः प्रजां वृञ्जीयं यदि मे द्रुह्येरिति स य इच्छेदेवं

वित्क्षत्रियो ऽहं सर्वा जितीर्जयेय महं सर्वांल्लोकान् विन्देय महं सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्य मतिष्ठां परमतां गच्छेयं साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्य माधिपत्य महं समन्तपर्यायी स्यां सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादा परार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति स न विचिकित्सेत्स ब्रूयात्सह श्रद्धया याञ्च रात्री मजायेऽहं याञ्च प्रेतास्मि तदुभयमन्तरेणेष्टा पूर्त्तं मे लोकं सुकृत मायुः प्रजां वृञ्जीथा यदि द्रुह्येयमिति॥ १ (१५)॥"

जिस राजाका ऐन्द्र महाभिषेक होना चाहिये, पहले इसीकी बात बतायी जाती है। कहते हैं कि, ऐसा अर्थात् इन्द्र सम्बन्धीय महाभिषेक जाननेवाला जो ब्राह्मण वा आचार्य इच्छा करे कि, कोई राजा वा क्षत्रिय सर्वजयादि फल पावे, तो वह आचार्य उस राजासे इस प्रकार शपथ कराके ऐन्द्र महाभिषेक विधिसे उसका अभिषेक करे। कैसे फलकी इच्छा? ऐसे फलकी इच्छा कि, यह राजा जीतने योग्य सब युद्धस्थलोंको जीते तथा सब लोकोंको अर्थात् देशोंको प्राप्त करे, सब राजाओंमें श्रेष्ठता और प्रभुताका पद पावे, इसका साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, राज्य, महाराज्य, आधिपत्य देश कालसे सर्वव्यापी हो, समुद्रतीर पर्यन्त सार्वभौमत्व और कालसंख्या पर्यन्त सार्वायुषत्व होकर यह पृथिवीका एक ही राजा हो।

शपथ कैसी हो, अब यह बताते हैं। जिस रात्रिको तू पैदा हुआ है और जिस रात्रिको तू मरेगा उन दोनोंके बीच का जो तेरा श्रौतस्मार्त्तकर्म फल, पुण्य, सुकृत, आयु और पुत्रादि हैं, उन्हें मैं तुझसे अलग कर लूंगा यदि तू मेरा द्रोह करेगा। ये वचन आचार्य कहता है।

इसके आगे कहते हैं कि, ऐन्द्र महाभिषेक जाननेवाला और उसके फलकी इच्छा करनेवाला जो क्षत्रिय हो, वह चाहे कि, मैं सब युद्धस्थलोंको जीतूं, सब देशोंको प्राप्त करूं, सब राजाओंमें श्रेष्ठता और प्रभुताका पद पाऊं, मेरा साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य राज्य, महाराज्य, आधिपत्य सर्वव्यापी समुद्रतीर पर्यन्त सार्वभौमत्व हो, काल संख्या पर्यन्त सार्वायुषत्व होकर मैं समुद्रपर्यन्त पृथिवीका अकेला ही राजा होऊं। वह आगापीछा न करे और श्रद्धाके साथ कहे कि, "जिस रात्रिको मैं पैदा हुआ हूं और जिस रात्रिको मैं मरूंगा, उन दोनोंके बीचका जो मेरा श्रौतस्मार्त्तकर्मफल, पुण्य, सुकृत, आयु और पुत्रादि हैं, उन्हें तू मुझसे अलग करले यदि मैं तेरा द्रोह करूं।"

यह सायणाचार्यके भाष्यकी व्याख्या है। ऐतरेय ब्राह्मण की भाषान्तरकार डाक्टर मार्टिन हफ लिखते हैं;—

Here the king is required by the priest to take the following oath "whatever pious work thou mightest have done &c, &c, &c, all these together with thy position, thy good deeds, thy life, thy children, I woued wrest from thee, shouldst thou do me any harm." Vol. II p. 520

अर्थात् यहां राजासे पुरोहित यह शपथ कराता है, " जो कुछ सुकृत तूने किये हैं इत्यादि इत्यादि इत्यादि वे सब तेरे पद, तेरे सुकर्मों, तेरे जीवन, तेरे पुत्रोंसहित मैं तुझसे छीन लूंगा यदि तू मुझे कोई हानि पहुंचावेगा।"

इस प्रकारकी शपथ करानेसे सिद्ध होता है कि, प्राचीन कालमें राजा और प्रजाका सम्बन्ध मालिक और नौकर जैसा वा स्वामी वा दाससा न था। प्रजावृन्दसे ही राजा निर्वाचित होता था और प्रजाके प्रतिनिधि पुरोहितजी उससे यह प्रतिज्ञा करा लेते थे कि, " मैं नियमानुसार शासन करूंगा। यदि न करूं तो तुम मुझे सब प्रकारके दण्ड दे सकते हो। मेरी निन्दा वा प्रशंसा, पुत्र कलत्र और जीवनतक तुम्हारे हाथ है। तुम्हें अधिकार है कि, यदि मैं प्रतिज्ञा न पूरी करूं और स्वेच्छाचारी होकर प्रजाको हानि पहुंचाऊं वा उसका द्रोह करूं, तो तुम मुझे अपने प्रिय परिजनोंसे अलग कर सकते, बन्दीगृहमें बन्द कर सकते वा मेरे प्राण ले सकते हो।"

इस प्रकारकी शपथसे एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि, राज्य प्रजाका समझा जाता है और प्रजाकी थाती समझकर राजा राजकाज चलाता है। पर राजा धर्मानुसार कार्य करेगा या नहीं इसका निश्चय करने और अधर्म करनेपर उसे दंड देनेकी शक्तिके उपयोगका भय दिखानेके लिये उससे शपथ वा प्रतिज्ञा करा ली जाती थी। राजा भी स्वेच्छाचारी नहीं होता था और नियमानुसार प्रजापालनमें तत्पर रहता था।

ऐतिहासिक प्रमाण ।

महाभारतके शान्तिपर्वके जिस अवतरणका भावार्थ पहले दिया गया है,उससे जाना जाता है कि,पृथु ही पहला नियंत्रित राजा निर्वाचित हुआ है। वेनकी जंघा और हाथ मथनेका जो वर्णन मिलता है, वह आलङ्कारिक मात्र है। वेनकी जंघा मथनेका यह अर्थ है कि, राष्ट्रकी जंघा रूपी वैश्य जाति में राज होने योग्य मनुष्य खोजा गया। पर वेनके कुशासनसे प्रजाका कुछ ऐसा अध:पतन हो गया था कि, वैश्य अपने गुणोंसे हीन हो गये थे। उस समय जो वैश्य सबसे अच्छा समझा गया था, वह बड़ा भयावना था और उसमें शासकोचित कोई गुण नहीं था। जब वह राजकर्त्ताओं वा निर्वाचकोंके सामने लाया गया, तब उन्होंने उसकी सूरत देखते ही उसे अयोग्य बताया। इसके बाद वेनका हाथ मथा गया। इस हाथ मथनेका यह भाव है कि, क्षत्रियोंमें राजा होने योग्य मनुष्य ढूंढा गया और पृथुको राजोचित गुणोंसे सम्पन्न देखकर प्रजाने राजा बनाया। इस व्याख्याके समर्थनमें श्रुतिका प्रमाण दिया जासकता है। पुरुषसूक्तमें विराट् पुरुषका बाहु क्षत्रिय और जंघा वैश्य बताया गया है। यहां विराट् पुरुषका अर्थ राष्ट्र है। इस लिये राष्ट्रकी जंघा वैश्य और बाहु क्षत्रिय हैं। यदि कोई कहे कि, राजा तो क्षत्रिय हुआ करते थे वैश्योंमें राजा होने योग्य मनुष्य क्यों ढूंढा गया, तो इसका यह उत्तर है कि, वेनके अत्याचारोंसे

लोगोंकी धारणा हो गयी थी कि क्षत्रिय अत्याचारी होते हैं। इस लिये उनसे निम्नकोटिका मनुष्य राजा होगा, तो प्रजाका पीड़न न हो सकेगा। पर जब शासकोचित गुणसम्पन्न वैश्य न मिला तब समझा गया कि, क्षत्रिय ही शासन करनेके लिये बनाया गया है, इस लिये क्षत्रियोंसे ही किसीको राजा बनाना चाहिये और अपनी तथा अपनी सम्मतिको रक्षाके लिये उससे प्रतिज्ञा करा लेनी चाहिये।

पृथुके अभिषेकके पहले निर्वाचकोंने उससे प्रतिज्ञा करा ली थी कि, पक्षपात रहित होकर प्रजाका शासन करूंगा। महाभारतके शान्ति पर्वके ५९ वें अध्यायमें इस प्रकार पृथुके निर्वाचनका उल्लेख किया गया है;—

तमूचुस्तत्र देवास्ते ते चैव परमर्षयः।
नियतो यत्र धर्मो वै तमशङ्कः समाचर ॥ १०३ ॥
प्रियाप्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु।
कामं क्रोधञ्च लोभञ्च मानं चोत्सृज्य दूरतः ॥१०४॥
यश्च धर्मात् प्रविचलेल्लोके कश्चन मानवः।
निग्राह्यस्ते स्वबाहुभ्यां शश्वद्धर्मं मवेक्षता ॥ १०५ ॥
प्रतिज्ञाञ्चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत ॥ १०६ ॥
यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीति व्यपाश्रयः।
तमशङ्कः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन ॥ १०७ ॥

अदंड्या मे द्विजाश्चेति प्रतिजानीहि हे विभो।
लोकञ्च संकरात्कृत्स्नं त्रातास्मीति परन्तप ॥१०८॥
वैन्यस्ततस्तानुवाच देवानृषि पुरोगमान्।
ब्राह्मणा मे महाभागा नमस्याः पुरुषर्षभाः ॥ १०९ ॥

अर्थात् देवताओं और परमर्षियोंने उससे (पृथुसे) कहा कि, नियमपूर्वक निर्भय होकर धर्मसम्मत कार्य करो। मित्र शत्रुका विचार न करके काम, क्रोध, लोभ, अभिमानको दूर रखकर सब प्राणियोंसे समान व्यवहार करो। जो कोई मनुष्य धर्मसे विचलित हो, धर्मका ध्यान रखकर तुम उसे दंड दो। तुम मन, कर्म और वाणीसे यह प्रतिज्ञा करो कि, पृथिवीपरके प्राणियोंको ब्रह्मस्वरूप समझकर मैं उनको रक्षा करूंगा। दण्डनीतिके अनुसार जो धर्म हैं, उनका मैं नियमानुकूल आचरण करूंगा। कभी मनमानी न करूंगा। हे विभो! यह समझो कि, ब्राह्मण मुझसे दण्ड पाने योग्य नहीं हैं और हे परन्तप! यह जानो कि, मैं वर्णसङ्करतासे लोगोंको रक्षा करनेवाला हूं। तब उन देवताओं और ऋषियोंसे वैन्यने (पृथुने) कहा कि, पुरुषश्रेष्ठ महाभाग ब्राह्मण मेरे नमस्य हैं।

यद्यपि उल्लिखित अवतरणमें पृथुने अपने निर्वाचकोंको केवल अन्तिम बातके विषयमें ही कहा है कि, ब्राह्मण मेरे नमस्य हैं, पर इससे यह न समझना चाहिये कि, और बातें उसने नहीं मानीं। क्योंकि यदि ऐसा न होता, तो वह कदापि

राजा न निर्वाचित होता। वेनको राजा बनाकर उस समयके लोगोंने कष्ट भोगे थे; इस लिये बिना किसी प्रकारकी प्रतिज्ञा कराये उन लोगोंका किसीको राजा बनाना असम्भव था। राजा धर्मानुसार आचरण करे और मनमानी घरजानी न करे इसी लिये जो प्रतिज्ञा पृथुसे करायी गयी थी, उसमें सब बातोंका समावेश था। वेनने ब्राह्मणोंको तङ्ग किया था और वर्णसंकरता फैलायी थी; इस लिये पृथुको बताया गया कि, तुम ब्राह्मणोंको अदंड्य और अपनेको वर्णसंकरताका नाशक समझो। पृथुने अन्तिम बातका उत्तर दिया इसलिये निर्वाचकोंने समझा कि, उसको सब बातें स्वीकार हैं और राजा बना दिया।

राजाके लिये प्रजाकी अनुकूलताकी कितनी आवश्यकता है यह बात निरुक्तके दूसरे अध्यायके तीसरे पादसे जानी जाती है—

देवापिश्चार्ष्टिषेणः शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः स शन्तनुः कनीयानभिषेचयाञ्चक्रे देवापिस्तपः प्रतिपेदे ततः शन्तनोः राज्ये द्वादश वर्षाणि देवो न ववर्ष तमूचुर्ब्राह्मणा अधर्मस्त्वया चरितो ज्येष्ठं भ्रातरमन्तरित्याभिषेचितं तस्मात्ते राज्ये देवो न वर्षतीति स शन्तनुर्देवापि शिशिक्ष राज्येन तमुवाच देवापि पुरोहितस्ते ऽसानि याजयानि च त्वेति तस्यैतद्वर्ष कामसूक्तं तस्यैषा भवति।

अर्थात् कुरुवंश सम्भूत ऋष्टिषेणके शन्तनु और देवापि नामके दो लड़के हुए। दोनों भाइयोंमें छोटे शन्तनुका राज्यभिषेक हुआ और बड़ा देवापि तपस्वी हो गया। इसके बाद देवापिके राज्यमें बारह वर्षतक वर्षा नहीं हुई। ब्राह्मणोंने उससे कहा कि तूने बड़े भाईके रहते अपना अभिषेक कराके अधर्म किया इससे वृष्टि नहीं होती। इसपर शन्तनु देवापि को लाने गया। देवापिने कहा कि, तेरा पुरोहित होकर यज्ञ कराऊंगा इससे वृष्टि होगी, यही कामसूक्तकी उत्पत्ति का कारण है।

इस ऐतिहासिक घटनासे जाना जाता है कि, अनावृष्टि होनेपर प्रजाके प्रतिनिधि स्वरूप ब्राह्मणोंने शन्तनुसे कहा कि, तू अपने भाईको ले आ और उसे गद्दीपर बिठा। शन्तनुने देखा कि, यदि मैं नहीं जाता, तो ये मुझे सिंहासनच्युत कर देंगे। इस लिये उसने जाकर देवापिसे कहा कि, आप चल कर राजकाज चलाइये। देवापिने उत्तर दिया कि, मैं तो पहलेसे ही इस झगड़ेसे अलग हूं, पर तेरी स्थिरता और प्रजाकी भलाईके लिये तेरा पुरोहित बनकर तुझसे यज्ञ कराऊंगा और वृष्टि होगी। निरुक्तके इस अवतरणसे यह भाव निकला कि, प्रजाकी इच्छाके विरुद्ध कोई राजा नहीं हो सकता।

रामायणमें भी राजा और प्रजाके इस सम्बन्धके विषयमें यथेष्ट चर्चा है। राजा दसरथने जब श्रीरामको युवराजपद

देनेका विचार किया था, तब उन्हें बड़ा भारी दरबार कर लोगोंकी सम्मति लेनी पड़ी थी। अयोध्याकाण्डके दूसरे सर्ग में इसका उल्लेख है। राजा दशरथने इस दरबारमें किन किनको बुलाया था, इस विषयमें वाल्मीकिजी लिखते हैं ;—

नाना नगरवास्तव्यान पृथग्जानपदानपि।
समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान् पृथवीपतिः ॥ ४६ ॥

"नाना नगरोंके रहनेवालों, जनपदवासियों और पृथिवीके प्रधानोंको पृथिवीपति दशरथने बुलवाया।" अर्थात् राजा दशरथने नाना नगरोंके और जनपदोंके प्रतिनिधियों तथा पृथिवीके प्रधानों वा राजाओंको बुलवाया। यहां पृथिवीसे उस समयकी जानी हुई और दशरथके राज्यकी अन्तर्भुक्त पृथिवीका प्रयोजन है। सारांश यह हुआ कि, रामको युव-राजपद देनेका निश्चय करनेके लिये जो सभा हुई थी, उसमें राजा दशरथके अधीन राजा और साधारण प्रजाके प्रतिनिधि आयेथे। इन राजाओंको वाल्मीकिजीने "लोकसम्मताः" कहा है। इससे जाना जाता है कि, जो मांडलिक राजा इस सभामें आये थे, वे प्रजाकी अनुकूलता प्राप्त थे, स्वेच्छाचारी न थे। इससे स्पष्ट है कि, इस समय समस्त प्रजाकी इच्छाके विरुद्ध कोई राजा नहीं बन सकता था।

वाल्मीकि मुनिने इस आमन्त्रणामण्डलको "परिषद" कहा है। यथा—

ततः परिषदं सर्वामामंत्र्य वसुधाधिपः ।
हितमुद्धर्षणञ्चैव मुवाच प्रथितं वचः ॥९॥
सोऽहं विश्राममिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते ।
सन्निकृष्टामिमा न्सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान् ॥ १० ॥
यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितं ।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम् ॥१५॥
यद्यपेषा मम प्रीतिर्हित मन्यद्विचिन्त्यताम् ।
अन्या मध्यस्थचिन्ता तु विमर्दाभ्यदिको दया ॥१६॥

अर्थात् जब सब लोग यथा स्थान बैठ गये, तब समस्त परिषद्को सम्बोधनकर राजा दशरथ हितकारी और उत्तम बचन बोले। अब मैं वृद्ध हुआ और थक गया हूं, इसलिये यहां समवेत द्विजश्रेष्ठोंको अनुमति लेकर प्रजाके हितार्थ पुत्रको (युवराजपद) देकर विश्राम करनेकी इच्छा करता हूं। यदि मेरा यह (प्रस्ताव) आपको समीचीन समझ पड़ता हो, तो मुझे अनुमति दीजिये। यदि यह मेरा ही प्रीतिदायी हो और हितकर न हो तो कुछ दूसरा हितकर उपाय सोचिये, क्योंकि मध्यस्थ लोग पूर्वपक्ष और उत्तरपक्षकी बातें निरपेक्ष होकर विचार करते हैं और इससे उनका विचार अधिक उत्तम हुआ करता है। कहिये मैं क्या करूं ?

तस्य धर्मार्थविदुषो भावमाज्ञाय सर्वशः ।
ब्राह्मण बलमुख्याश्च पौरजानपदैः सह ॥१८॥

समेत्य ते मन्त्रयितुं समतागतबुद्धयः ।
ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम् ॥२०॥
अनेक वर्षसाहस्रो वृद्धस्त्वमसि पार्थिव ।
स रामं युवराजानमभिषिञ्चस्व पार्थिव ॥२१॥

"इसके उपरान्त धर्म और अर्थके तत्त्वोंको जाननेवाले राजा दशरथका अभिप्राय समझ वे (राजा) ब्राह्मणों, सैन्याध्यक्षों, पुरवासियों तथा जनपदवासियों सहित परामर्श करनेको इकट्ठे हुए और एकमत होकर उन्होंने राजा दशरथसे इस प्रकार अपना निर्णय कहा;—'हे पार्थिव ! आप कई सहस्र वर्षके वृद्ध हैं, रामको युवराजका अभिषेक कीजिये।'"

राजाको असन्त्रणामण्डलके इस निर्णयसे प्रसन्नता तो बहुत हुई, परन्तु उन्होंने इसका निश्चय करलेना चाहा कि, यह सम्मति स्वेच्छासे दी गयी है या दबावमें पड़कर। इसलिये उन्होंने पूछा—

कथं नु मयि धर्म्मेण पृथिवीमनुशासति ।
भवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महाबलम् ॥२५॥

"क्या मैं धर्मसे पृथिवीका शासन नहीं करता, जो आप लोग युवराजका पराक्रम देखना चाहते हैं ?" इसके उत्तरमें समस्त परिषद्ने कहा, "बहवो नृप कल्याण गुणाः सन्ति सुतस्य ते" अर्थात् हे राजा ! तेरे पुत्रमें बहुत कल्याणकर गुण हैं। इस भांति सब प्रकारसे लोकमत जानकर दशरथने रामको युवराजपदके लिये अभिषिक्त करना स्थिर किया था।

रामायणके समयमें प्रजाको अधिकार था कि, वह चाहे उसी वंशके किसी मनुष्यको राजा बनावे वा किसी दूसरेको। इसका प्रमाण भी अयोध्याकाण्डमें ही है। जब सीता लक्ष्मणसहित राम बनको चले गये थे और इधर राजा दशरथने उनके वियोगमें प्राण त्याग किया, तथा राजवंशका कोई मनुष्य अयोध्यामें न था, क्योंकि भरत और शत्रुघ्न अपने नानाके यहां केकय देशमें विराजमान थे, तब एक बार प्रजाशक्तिका परिचय मिला था। अयोध्याकाण्डके ६७ वें सर्गमें वाल्मीकिजी लिखते हैं—

व्यतीतायान्तु शर्व्वर्याम् आदित्यस्योदये ततः।
समेत्य राजकर्त्तारः सभामीयुर्द्विजातयः ॥ २ ॥
मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्चकाश्यपः।
कात्यायनो गौतमश्च जावालिश्च महायशाः ॥ ३ ॥
एते द्विजा सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन्।
वशिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम् ॥४॥
अतीता शर्व्वरी दुःखं यातो वर्षं शतोपमा।
अस्मिन् पञ्चत्वमापन्ने पुत्रशोकेन पार्थिवे ॥५॥
स्वर्गस्थश्च महाराजो रामश्चवनमाश्रितः।
लक्ष्मणश्चापि तेजस्वी रामेणेव गतः सह ॥६॥
उभौ भरतशत्रुघ्नौ केकयेषु परन्तपौ।
पुरे राजगृहे रम्ये मातामहनिवेशने ॥७॥

इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयतां ।
अराजकं हि राष्ट्रं नो विनाशं समवाप्नुयात् ॥८॥

अर्थात् "रात बिताकर दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर राजा बनानेवाले द्विजाति सभास्थलमें एकत्र हुए। मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, गौतम और जावालि ये ब्राह्मण मन्त्रियोंसहित अपनी अपनी ओरसे श्रेष्ठ राजपुरोहित वशिष्ठको अध्यक्षकी भांति सम्बोधन करके बोलते थे। पुत्रशोकसे राजाने प्राण त्याग किये और हम लोगोंने भी दुःखमें ही रात बितायी, और यह रात हमको सौ वर्षके समान जान पड़ी। महाराज तो स्वर्गको सिधारे, राम लक्ष्मण बनको गये। भरत शत्रुघ्न केकय देशके राजगृह नगरमें अपने नानाके यहां हैं। आज ही आप इक्ष्वाकुवंशके किसी कुमारको राजा बना दें, क्योंकि बिना राजा राष्ट्रका नाश हो जायगा।"

उल्लिखित अवतरणमें "राजकर्तारः" पदसे सिद्ध होता है कि, राजा बनानेका अधिकार उन लोगोंको प्राप्त था, जो उस सभामें एकत्र हुए थे। वशिष्ठजीकी निरपेक्षतापर अन्य राजकर्ताओंको इतना विश्वास था कि, इन्होंने यहांतक कह डाला कि, इक्ष्वाकुवंशके किसी कुमारका अभिषेक कर उसे गद्दीपर बैठा दीजिये। वशिष्ठजीपर प्रजाका कितना विश्वास था, यह श्लोकसे लोगोंने जाना जाता है—

जीवत्यपि महाराजे तवैव वचनं वयं।
नातिक्रमामहे सर्व्वे वेलां प्राप्यैव सागरः ॥ ३७॥
स नः समीक्ष्य द्विजवर्य्यवृत्तं, नृपं विना राष्ट्रमरण्यभूतं।
कुमारमिक्ष्वाकुसुतं तथान्यं,त्वमेव राजानमिहाभिषेचय।३८

"महाराजकी जीवितावस्थामें भी हम सबने आपकी बात कभी नहीं टाली है, इस लिये राजाके विना राष्ट्रकी दुर्गति होनेके कारण हम आपसे कहते हैं कि, आप चाहें तो इक्ष्वाकुके वंशके किसी मनुष्यको राजा बना दें वा किसी दूसरे को राजसिंहासनपर बैठा दें।"

वशिष्ठको सभाने यह अधिकार दे दिया था कि, आप चाहें इक्ष्वाकुवंशके किसी पुरुषको राजा बनावें चाहें किसी दूसरेको। आपका निर्णय हमें स्वीकार होगा। पर वशिष्ठजीने अपनी मनमानी करना नियम विरुद्ध समझकर उन सब मित्रों, मंत्रियों, प्रजाजनों और ब्राह्मणोंको सम्बोधन कर कहा कि,राजाने भरतको राज्य दिया है, इस लिये इसमें हमलोगों के विचार करनेकी कोई बात नहीं है, भरतको नानाके घरसे लानेके लिये दूत भेजे जांय। सभासदोंको भी यह बात भायी और दूत भेजे गये।

प्रजाद्वारा राजाके निर्वाचनका तीसरा उदाहरण किष्किन्धाकाण्डमें मिलता है। दुन्दुभि नामक राक्षसके लड़के मायावी और किष्किन्धाके वानर राजा बालीसे एक स्त्रीके कारण कुछ झगड़ा हो गया था। एक बार रातको मायावी आकर

वालीके द्वारपर गर्जा और उसे लड़ाईके लिये ललकारने लगा। वाली सोता था, पर उसकी नींद खुलगयी और सुग्रीव सहित उसने मायावीका पीछा किया। राक्षस एक गुफामें घुस गया। वालीने सुग्रीवसे बाहर ठहरनेके लिये कहा और आप भी उस गुफामें पैठ गया। एक वर्षतक गुफाके द्वारपर सुग्रीव भाईकी प्रतीक्षामें खड़ा रहा। एक दिन जब उसने भीतरसे फेन और रक्त निकलते देखा और अपने भाईका गर्जन न सुन कर राक्षसका सुना, तब उसे मरा समझ सुग्रीव लौट आया। इतनी सब बातें श्रीरामचन्द्रसे बताकर सुग्रीवने कहा—

गूहमानस्य मे तत्त्वं यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम्।
ततोऽहं तैः समागम्य समेतैरभिषेचितः॥ २०॥
किष्किन्धा० सर्ग ९

अर्थात् अनन्तर यत्नपूर्वक मेरे वास्तविक घटना छिपानेपर भी मंत्रियोंने मिलकर तथा एकत्र होकर मुझे राजा बनाया। आगे चलकर सुग्रीव कहता है कि, वालीने मुझपर जब बहुत क्रोध किया, तब मैंने उससे कहा;—

"विषादात्त्विह मां दृष्ट्वा पौरैर्मन्त्रिभिरेव च।
अभिषिक्तो न कामेन तन्मे क्षन्तुं त्वमर्हसि॥ ६॥
बलादस्मि समागम्य मन्त्रिभिः पुरवासिभिः।
राजभावे नियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया॥ १०॥

अर्थात् मुझे दुःखी देखकर पुरवासियों और मन्त्रियोंने मेरा अभिषेक किया, पर मैंने स्वयं नहीं की, इस लिये

मुझे क्षमा करना चाहिये। राजहीन देश देखकर कहीं कोई शत्रु न चढ़ आवे इस भयसे मेरे यहां आनेपर मंत्रियों और पुरवासियोंने बलपूर्वक मुझे सिंहासनपर बैठा दिया।

वानर जाति अनार्य थी, पर राक्षसोंकी भांति सर्वथा असभ्य न थी। उसने आर्य शासनपद्धतिका बहुत कुछ अनुकरण किया था और राजाके अभावमें वह दूसरा राजा नियुक्त कर लेती थी। इसी लिये बालीके चले जानेपर उसने सुग्रीवको राजा बना लिया था।

महाभारतके समयमें वैसा कोई उदाहरण यद्यपि नहीं दिखायी दिया, तथापि नीचे उद्धृत अंशसे यह ज्ञात पड़ेगा कि, दुर्योधनादि कौरवोंसे प्रजा प्रसन्न न थी और वह युधिष्ठिरको राजा बनाना चाहती थी। इससे दुर्योधन जलता था और उन्हें अनेक प्रकारके कष्ट पहुंचाकर पाण्डवोंका सर्वनाश करना चाहता था। महाभारतके युद्धमें पाण्डवोंकी जीतका प्रधान कारण भी प्रजाकी अनुकूलता ही था। यदि उस समय दुर्योधनादि कौरव नीच प्रयत्न न करके प्रजाकी इच्छापर राजाका निर्वाचन छोड़ देते अथवा देशमें अशान्ति न होती तो प्रजा युधिष्ठिरको राजसिंहासनपर बिठाती। महाभारतमें लिखा है;—

"गुणैः समुदितान् दृष्ट्वा पौराः पाण्डुसुतांस्तदा।
कथयाञ्चक्रिरे तेषां गुणान् संसत्सु भारत॥ १॥

राज्यप्राप्तिं च सम्प्राप्तं ज्येष्ठं पाण्डुसुतं तदा ।
कथयन्ति च सम्भूय चत्वरेषु सभासुच ॥ ५ ॥
प्रज्ञाचक्षुरचक्षुत्वात् धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
राज्यं न प्राप्तवान् पूर्व्वं स कथं नृपतिर्भवेत् ॥ ६ ॥
तथा शान्तनवो भीष्मः सत्यसन्धो महाव्रतः ।
प्रत्याख्याय पुरा राज्यं न स जातु ग्रहीष्यति ॥ ७ ॥
ते वयं पाण्डवज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम् ।
अभिषिञ्चामि साध्वद्य सत्यकारुण्यवेदिनम् ॥ ८ ॥
सहि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रञ्च धर्म्मवित् ।
सपुत्र विविधैर्भोगैः योजयिष्यति पूजयन् ॥ ९ ॥
तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यानि जल्पतां ।
युधिष्ठिरानुरक्तानां पर्य्यतप्यत दुर्मतिः ॥ १० ॥

अर्थात् "तब पुरवासी पाण्डवोंके अच्छे गुणोंको देखकर अपनी सभाओंमें उनका वर्णन करने लगे। अपने चौतरों और अपनी सभाओंमें बैठकर उस समय आये हुए पाण्डुके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरको राज्यप्रातिके विषयमें चर्चा करते थे। (वे कहते थे कि,) प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रने जब पहले राज्य नहीं पाया, तब अब वे कैसे पावेंगे ? तथा शान्तनुके पुत्र सत्यव्रत भीष्मने पहले राज्य नहीं लिया तो वे अब कदापि राजा न बनेंगे। अब हम लोग पाण्डुके ज्येष्ठ पुत्र तरुण और ज्ञानवृद्ध युधिष्ठिरको राजा बनावेंगे, जो सत्य और करुणाके जाननेवाले हैं वे धर्मज्ञ युधिष्ठिर, भीष्म, धृतराष्ट्र और कौरवोंके प्रत्येक

प्रकारकी सुखकी व्यवस्था करेंगी। दुर्बुद्धि दुर्योधन उनकी इस प्रकार युधिष्ठिरपर श्रद्धा देख जल उठा।"

कौरवों पाण्डवोंके युद्ध और वर्त्तमान् महाभारतके निर्माण कालके विषयमें अनेक मत हैं। साधारणतः हम हिन्दुओं का विश्वास है कि, महाभारत युद्ध हुए ५,००० वर्षसे अधिक हुए हैं और उसी समय वेदव्यासने यह ग्रन्थ बनाया है। पाश्चात्यों में कुछ तो महाभारतके योद्धाओं और वीरों तथा युद्धको काल्पनिक समझते हैं और कुछ विद्वानोंकी समझ है कि, ईसवी सनके कई वर्ष पहले यह युद्ध हुआ था और महाभारत ग्रन्थ ईसवी सनके आरम्भका बना है। हम समझते हैं कि, महाभारत युद्ध ५,००० वर्ष पहले हुआ बतानेके लिये यथेष्ट प्रमाण हैं। पर ग्रन्थनिर्माणसमयके विषयमें हम दोनों मत अस्वीकार करते हैं। वर्त्तमान् महाभारत सारेका सारा वेदव्यासका लिखा नहीं है, इसका प्रमाण इसी ग्रन्थमें मिलता है। हम इसके तीन संस्करण मानते हैं। पहला तो वेदव्यास रचित था, पर उसका नाम महाभारत नहीं, "जय" था। दूसरा संस्करण जन्मेजयके सर्पसत्रमें वैशम्पायनने किया, तब उसका नाम "भारत" हुआ और तीसरा संस्करण सूतके पुत्र सौतिने किया। युद्धका जितना पक्षपातरहित वर्णन है, वह व्यासका "जय" ग्रन्थ है। व्यासके ग्रन्थका नाम "जय" था, यह इस श्लोकसे सिद्ध होता है ;—

"नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासो ततो जय मुदीरयेत् ॥

भारत ग्रन्थ व्यास शिष्य वैशम्पायनका है, इस लिये यह ५ हजार वर्षसे कमका है। सौतिका महाभारत हिन्दू धर्मका कोष कहा जा सकता है। क्योंकि इसमें हिन्दू धर्म और उस समयके इतिहास न जाने कहांसे ला लाकर भर दिये गये हैं। इसकी प्रशंसाके विषयमें कहा जाता है कि, जो विषय अन्यत्र न मिलेगा,वह महाभारतमें मिलेगा और जो महाभारतमें नहीं है, वह कहीं नहीं है। यह महाभारत २,२०० वर्षका पुराना है। जो हो, हमने जो अवतरण दिया है उससे यदि व्यासके समयकी राजनीतिका पता न भी लगे, तो यह अवश्य जाना जाता है कि, ईसवी सनके २०० पहले लोगोंके कैसे विचार थे।

प्रोफेसर रीज डेविड्सने अपनी "बुधिस्ट इण्डिया" नामकी पुस्तकके दूसरे पृष्ठमें भारतशासनके सम्बन्धमें लिखा है कि, बौद्धोंके प्राचीनतम ग्रन्थोंसे जाना जाता है कि, थोड़े बहुत शक्तिशाली राजतंत्रोंके साथ ही सम्पूर्ण वा असम्पूर्ण स्वतंत्रतायुक्त प्रजातंत्र बचे हुए थे। इसी पुस्तकमें लिखा है कि, बुधके समयमें चार ही राजतंत्र थे। अर्थात् मगध, कोशल, वंश वा वत्स तथा आवन्तीमें तो राजा थे और अवशिष्ट देशोंमें प्रजातंत्र राज्य थे। मगधकी राजधानी राजगृह वा राजगिर थी और उसके राजाका नाम बिम्बसार था। कोशल-

की राजधानी सावत्थी वा श्रावस्ती थी और राजाका नाम पसेनादि था। वंश वा वत्स राज्यकी राजधानी कौशाम्बी थी, जो आजकल कोसम कहाती है। और राजाका नाम उदेन था। आवन्तीकी राजधानी उज्जेन थी और राजाका नाम पज्जोत था। लिच्छिवी, मल्ल, शाकीय आदि जातियोंके प्रजातंत्र थे।

प्रो० डेविड्स इस शाकीय जातिकी शासन प्रणाली और विचार व्यवस्थाके विषयमें लिखते हैं;—

The administration and the Judicial business of the (Sakiya) clan was carried out in public assembly at which young and old were alike present. in their common Mote Hall (Santhagara) at Kapilavastu, It was at such a parliament or palave, that king Pasenadi's proposition (of asking a daughter of the Sakiya family as wife) was discussed. When Ambattha goes to Kapilavastu on business he goes to the Mote Hall where the Sakiyas were then in session. And it is to the Mote Hall of the Mallas that Ananda goes to announce the death of the Buddha, they being in session then to consider that very matter.

अर्थात् शाकीय जातिका शासन और विचार सम्बन्धीय कार्य कपिलवस्तुमें सार्वजनिक सन्थागारमें प्रकाश्य सद्ममें होता था जिसमें छोटे बड़े समान भावसे उपस्थित होते थे। ऐसी ही पार्लमेंटमें राजा पसेनादिके (शाकीय वंशकी कन्यासे ब्याह करनेके) प्रस्तावपर विचार हुआ। जब अम्बट्ठ कार्यवश कपिलवस्तु गया, तो वह संथागारमें गया, जहां शाकीय लोग राजकाज कर रहे थे। और बुद्धकी मृत्युकी सूचना देनेके लिये आनन्द मल्लोंके सन्थागारमें गया था, जो उस समय उसी विषयपर विचार कर रहे थे।

इन प्रजातन्त्र राज्योंके मुखिये राजा ही कहाते थे। प्रो० र्‌हीज डेविड्स लिखते हैं;—

A single chief—how, and for what period chosen, we do not know—was elected as office-holder, presiding over the sessions, and if no sessions were sitting, over the State. He bore the title of raja, which must have meant something like the Roman cousul or the Greek archan. * * * But we hear nowhere of such a triumvirate as bore corresponding office among the Lichhavis nor of such acts of kingly sovereignity as are ascribed to the real kings mentioned above. But we hear at one time that Bhadiya, a young consin of the Buddha's, was the raja; and in another passege, Suddhodana, the Buddha's father (who is else where spoken of as a simple citizen Suddhdan the Sakiyen,) is called the raja. (p, 19)

अर्थात् एक मुखिया—कैसे और किस अवधिके लिये चुना जाता था यह हमें नहीं मालूम—कार्यकर्त्ता निर्वाचित होता था जो सभाके (अधिवेशनोंमें) अध्यक्षत्व करता था और यदि अधिवेशन नहीं होते थे तो राजकाज चलाता था। इसकी पदवी राजा थी, जो कुछ कुछ रोमनोंके कन्सल (१) या यूनानियोंके आर्कनके (२) समान था। *** पर लिच्छिवियोंमें ऐसे पदपर एक त्रिकूट या त्रिमूर्त्ति हुआ करती थी उसका जोड़ा कहीं नहीं मिलता,

---

(१) प्रजातन्त्रके समय रोममें समस्त रोमन समाजके साधारण मैजिस्ट्रेटोंमें दो सर्वोच्च मैजिस्ट्रेट कन्सल कहाते थे।

(२) प्राचीन यूनानके कई राज्योंमें सर्वोच्च मैजिस्ट्रेट आर्कन कहाते थे। पहले ये १० वर्षके और फिर १ वर्षके लिये नियुक्त होते थे। ये मुख्की काम करते थे।

और न राजाके समान राजत्वके वैसे कार्यों का ही पता चलता है जो ऊपर लिखे वास्तविक राजाओंके विषयमें कहे जाते हैं। पर हम सुनते हैं कि, एक समय बुद्धका भादिया नामक जवान चचेरा भाई राजा था; और दूसरे स्थलपर बुद्धका पिता शुद्धोदन (जो अन्यत्र शाक्कीय शुद्धोदन साधारण नागरिक बताया गया है) राजा कहा गया है।

जो कौटिलीय अर्थशास्त्र मैसोर राजदरबारसे प्रकाशित हुआ है और सम्राट् मौर्य चन्द्र गुप्तके मन्त्री चाणक्यका बनाया बताया जाता है, उसमें भी उस समयके प्रजातन्त्रोंके प्रधान "राजा" बताये गये हैं। यथा, "लिच्छिविकव्रजिकमल्लकमद्रककुकुरकुरुपाञ्चालादयो राजशब्दोपजीविन:।" ११।१।१६०-१६१। अर्थात् लिच्छिवी, व्रजी, मल्ल, मद्र, कुकुर, कुरु, पाञ्चाल आदि जातियोंके मुखिये भी "राजा" कहाते हैं।

लोकनिर्वाचित राजाका वर्णन एतद्देशीय विद्वानोंके लिखे दो और ग्रन्थोंमें भी मिलता है। इनमें एकका नाम केरल माहात्म्य और दूसरेका केरलोत्पत्ति है। केरल माहात्म्य संस्कृतमें है, यद्यपि भाषा जैसी विशुद्ध होनी चाहिये, वैसी नहीं है और केरलोत्पत्ति प्रादेशिक भाषामें है जो मलयालम नामसे प्रसिद्ध है। चेर वा केरल प्रदेश आजकल मलाबार कहाता है। मि॰ विन्सेण्ट स्मिथ कहते हैं कि, केरलके अन्तर्गत मलाबारके अतिरिक्त कोचीन और ट्रावङ्कोर

राज्योंके भी कुछ अंश हैं। केरल माहात्म्यकी अपेक्षा केर-लोत्पत्तिमें क्रमपूर्वक लिखा गया है। इसलिये केरलोत्पत्ति-के मतको ही हमने इसमें प्राधान्य दिया है।

केरलकी उत्पत्ति परशुरामने की थी और चौसठ गावोंके ब्राह्मणोंको भरणपोषणके लिये उसे दान कर दिया था। अनन्तर इन चौसठ गावोंसे चार गाव चुनकर उनके ब्राह्मणों-को परशुरामने चौसठ गावोंका प्रतिनिधित्व दिया। ब्राह्मण शस्त्रधारी थे और ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णोंके कर्म करते थे। केरलकी कर्मभूमिपर इस प्रकारके प्रतिनिधित्वसे राजकाज चलनेसे कलह मची और अन्याय हुआ। उस समय सब गावोंके ब्राह्मण एकत्र हुए और उन्होंने यह निश्चय किया कि, हर चार गाव मिलकर एक संरक्षक अधिकारी चुनें और उस अधिकारीके तथा उसके नीचे काम करनेवाले अधिकारियोंके खर्चके लिये उन चार गावोंकी जमीनकी उपजका छठा भाग दिया जाय। पर कालान्तरमें ये अधिकारी अत्याचार करने लगे। इसपर इन ब्राह्मणोंने फिर सभा की और उन चार गावोंके लोगोंको एक राजा चुननेके लिये कहा। इसके अनुसार केय पेरमाल नामक एक प्रसिद्ध पहाड़ीको लोगोंने राजा चुना। यह घटना २१६ ईसवी सनके लगभगकी है। अपने चुने हुए इस राजाको गद्दीपर बैठानेवाले ब्राह्मणोंने इससे शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करायी। उस प्रतिज्ञाके शब्द इस प्रकार थे "राज्य-

के जो काम तुम न कर सकोगे, वे मैं करूंगा। प्रजाकी रक्षा करना तो राजाका काम ही है, वह मैं स्वयं करूंगा।" प्रजाने सब झगड़े निपटानेका अधिकार अपने हाथमें ही रखा था और राजासे यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि, इनमें हम हस्तक्षेप न करेंगे। कोय पेरुमालसे १२ वर्ष तक राज्य करानेका निश्चय किया गया था, पर उसने आठ ही वर्षतक राज्य किया।

कोय पेरुमालके बाद ब्राह्मणोंने चोय (चोल) मण्डलसे "चोय (चोल) पेरुमाल" नामक मनुष्यको राजा चुना और उसे लाकर गद्दीपर बैठाया। इसने १० वर्षतक राज्य किया। इसके बाद "पांड्य पेरुमाल' नामक राजा चुना गया इसके बादके राजा "भूतार यार पांड्य पेरुमाल" और ब्राह्मणोंमें जब झगड़ा हुआ, तब एक ब्राह्मणने उसका नाश किया। इसके उपरान्त केरलपर कई आक्रमण हुए, तब परशुरामने ब्राह्मणोंको नवीन राजा चुननेकी आज्ञा दी। इसके अनुसार उन्होंने "तिरुणावाई महामख" नामक उत्सवके अवसरपर "केरलन" नामक मनुष्यको राजा चुना और उसे गद्दीपर बैठाया। इस राजाके लिये प्रजाने राजप्रासाद बना दिया, भद्रकाली नामकी तलवार राजदण्ड स्वरूप इसको भेंट की और इसके लिये आयके कुछ विभाग और कर (टैक्स) अलग कर दिये। लोकनियुक्त राजाओंका यह क्रम चलता रहा। इनमें कितने ही राजा अच्छे और

कितने ही बुरे निकले। जिसमें राजा अपने अधिकारोंका दुरुपयोग न करें वा अत्याचारी न हों, इसलिये केरल ब्राह्मणों-ने समय समयपर केरलभूमिके भिन्न भिन्न विभाग किये थे और ग्रामसंस्थाओंको राजाके कार्योंको देखभाल रखनेका अधिकार दिया था। आर्य पेरुमालके समयमें राजकीय दृष्टिसे केरल देशकी पुनर्रचना हुई। क्योंकि यह चार पांच गावोंके लोकनियुक्त प्रतिनिधियोंकी सम्मतिसे राजकाज चलाता था। लोकनियुक्त राजाका शासनकाल बारह वर्ष रखा गया था, पर प्रजा और राजाकी इच्छासे यह अवधि घट बढ़ जाती थी। केरल माहात्म्यमें इसका एक उदाहरण है। अनागोंदी कृष्णरायर नामक राजाको राज करते जब बारह वर्ष बीत गये, तब उसके शासनकी अवधि बारह वर्ष और बढ़ा दी गयी।

मलयालियोंके सम्बन्धके तीन चार प्राचीन लेख इतिहास शोधकोंको मिले हैं। इनसे नायर लोगोंमें प्रातिनिधिक शासनपद्धतिका पता मिलता है। इस शासनपद्धतिमें ऊपर लिखे अनुसार एक लोकनियुक्त अधिराज था। इसके नीचे अनेक छोटे मोटे राजा थे। राजाओंको "उटायावर" कहते थे और इनके अधिकारकी भूमि "नाड" कहाती थी। नाडका अर्थ "अधिकारी नायर लोगोंका सङ्घ" है। इस संघमें प्रायः छ सौ प्रतिनिधि होते थे और इसका काम नाडके अधिकारोंकी रक्षा करना और राजाके कामोंकी देख-

भाल रखना था। केरलोत्पत्तिमें लिखा है कि, "राजाके विरुद्ध प्रजाके जो अधिकार थे, वे दिनों दिन काम न होने लगें अथवा उपयोग न होनेपर उनकी विस्मृति न हो जाय यही इस नाडसंघका मुख्य हेतु वा उपयोग था"।

मलाबार गैजेटियरके प्रथम खण्डके २६७ वें पृष्ठमें लिखा है;-

They were in short the custodims of ancient rights and custons; they chastised the Chieftain's Ministers when they committed "unwarrantable acts" and were the Parliament of the land.—Malabar Gazetteer Part I. P. 267.

अर्थात् ये संघ प्रजाके प्राचीन और सनातन अधिकारोंकी रक्षा करते थे। केवल यही नहीं, राजाके नियुक्त किये मन्त्रियोंके अनुचित कार्योंके लिये ये उन्हें दण्ड भी देते थे, और देशकी पार्लमेंटके समान थे।

सर टामस मनरोने १७४६ सनको अपने रोजनामचेमें लिखा है कि, "नायर लोग कालिकटकी प्रजामें सबसे श्रेष्ठ हैं और इनकी रचना पार्लमेण्टसी है। ऐसा होनेपर इनकी बातोंपर राजाज्ञा भी नहीं चलती थी, और ये मन्त्रियोंको दण्ड दे सकते थे।"

और भी १३२ वें पृष्ठपर लिखा है कि,—

From the earliest times down to the end of the eighteenth century the Nayar Tara or Nad organigations kept the country from oppression an tyranny on the part of the rulers, and to this fact more than to any other is due the comparative prosperity which Malylai country so long enjoyed and which made Calicut at one time the great emporium of trade betwen the east and the west.

अर्थात् अति प्राचीन कालसे १८ वीं शताब्दीके अन्ततक नायरोंको तारा या नाड संस्थाएं शासकोंके अत्याचार और क्रूरतासे देशकी रक्षा करती थीं और इतने दिनोंतक मलयाली देशको अपेक्षाकृत अधिकसमृद्धि तथा किसी समय कालिकटको पूर्व और पश्चिमके बीच बड़ी मण्डी बनानेवाला यही मुख्य कारण है।

गौड़के इतिहासमें भी लोकनियुक्त राजाका पता मिलता है। १८७५ के इंडियन ऐंटिक्वेरीकी दिसम्बर संख्यामें "तारानाथके मगध राजा" शीर्षक लेखमें लिखा है कि, मात्स्य-न्याय दूर करनेके लिये लोगोंने गोपालको कुछ कालके लिये राजा निर्वाचित किया था, पर पीछे उसे जन्मभरके लिये राजा बना दिया। गोपालके निर्वाचनके पहले अराजकता फैली हुई थी। इसी प्रकारके और भी ऐतिहासिक उदाहरण मिलते हैं, पर विस्तार भयसे उन्हें हम छोड़ देते हैं।
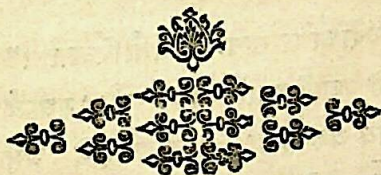
राजा और प्रजाका सम्बन्ध।

राजा और प्रजाके सम्बन्धकी कुछ बातें तो पहले कही जा चुकी हैं। अब यहां यह दिखाया जायगा कि, राजाकी सत्ता अवाधित वा अनियन्त्रित नहीं होती और प्रजाकी इच्छाके विरुद्ध वह कुछ नहीं कर सकता। लोकसभाके प्रति उसकी कैसी भक्ति होनी चाहिये यह भी बताया जायगा।

वैदिक साहित्यमें राजाकी बड़ी प्रशंसा है। संहिता और ब्राह्मण सभी एक स्वरसे राजाकी प्रशंसा करते हैं। ऋग्वेदमें (५।३।२६) लिखा है—

"राजा राष्ट्राणां पेशः।"

अर्थात् राजा राष्ट्रका सौन्दर्य है। इसी प्रकार तैत्तरीय संहितामें (१।५।११) लिखा है —

"राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।"

अर्थात् राजा राष्ट्रकी शोभा है। पर कौन राजा राष्ट्रकी शोभा और सौन्दर्य्य माना जाता था ? ऋग्वेदमें (८।८२।६) लिखा है;—

"राजा न सत्यः समितीरियानः।"

अर्थात् सभामें जानेवाला राजा ही यथार्थ राजा है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि, लोकमतके अनुसार अथवा लोकसभाकी सम्मतिसे राजकाज चलानेवाला राजा ही यथार्थ राजा है। इसीके समान और भी ऋचाएं हैं। ऋग्वेदकी ७।१८ ऋचाका एक अंश है—

"त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।" अर्थात् राजा लोग तीन सभाएं करते और (स्वयं जाकर) उन्हें सुशोभित करते हैं। वैदिक युगमें सर्वसाधारणके अधिकारों और भलाईका प्रजाको बड़ा ध्यान रहता था। इसी लिये राजाके अधिकार सङ्कुचित किये गये थे। उस समयके लोग समझते थे कि, राजाको अधिक अधिकार देनेसे ही वह प्रजापर अत्याचार करेगा। इसीसे राजसभाका प्राधान्य नहीं होने पाता था। लोकमतसे शासन करनेवाले राजाओंके विषयमें ऋग्वेदकी (५।३।४१) ऋचामें एक अंशमें कहा गया है;—

"राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे।
सहस्रस्थूण आसाते।"

अर्थात् जो राजा अनेक स्तम्भोंसे युक्त उत्तम और सुदृढ़ सभामें बैठते हैं, वे परस्परमें द्रोह नहीं करते। इसका कारण यह है कि, जिस देशके राजा लोकमतके अनुसार शासन करते हैं, वे परस्परमें लड़ाई भिड़ाई नहीं करते। क्योंकि ऐसे राजा लोकसभाकी अनुकूलता बिना किसीसे युद्ध नहीं छेड़ सकते। लोकसभाके सभासदोंको स्वयं जाकर वा अपने भाईबन्दोंको भेजकर युद्ध करना पड़ता है; इसलिये जहांतक युद्ध निवार्य हो सकता है, वहांतक वे उसके पक्षमें सम्मति नहीं देते। इसीसे सभामें जानेवाला राजा ही यथार्थ राजा बतलाया गया है।

राजसभा वा राष्ट्रसभाके अधिकार अधिक हुआ करते थे, इसलिये राजाको उसे सन्तुष्ट रखनेके प्रयत्न करने पड़ते थे। समय समयपर वह सभासदोंसे अपनी सभाकी रक्षाकी प्रार्थना किया करता था। अथर्ववेदके १९ वें काण्डके एक मन्त्रका अंश है;—

"सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः।"

१९।५५।५

अर्थात् हे सभ्य सभासदो मेरी सभाकी रक्षा करो। अथर्ववेदमें और भी अनेक मन्त्र हैं, जिनसे राष्ट्रसभा और राष्ट्रसमिति तथा सभासदोंकी शक्तिका पता मिलता है। एक मन्त्र है ;—

"सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना सङ्गच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः सङ्गतेषु।"

अथर्व० ७।१२।१

अर्थात् सभा और समिति मेरी रक्षा करें (दोनों) राजासे दूर रहनेवाली और उसे ज्ञान देनेवाली हैं, जिससे (सभासदसे) मैं मिलूं वह मुझे शिक्षा दे। हे (मेरे) पितृस्थानी सभासदो ! मैं प्रतिदिन सभामें अच्छी बातें कहूं।

इस मन्त्रमें "प्रजापतेर्दुहितरौ" और "पितरः" इन पदोंके विशेष अर्थ किये गये हैं। प्रजापतिका "राजा" अर्थ अप्रचलित नहीं है, पर "दुहितरौ" पदके "दूर रहकर हित करनेवाली" अर्थमें कुछ नवीनता जान पड़ेगी। दुहिता

शब्दका मूल अर्थ "दूरे हिता" अर्थात् दूर रहकर हित करनेवाली है। साधारणतः "पितरः" पद परलोकगत पितरोंके अर्थमें प्रयुक्त हुआ करता है। पर यहां सभा और सभासदोंका प्रकरण है, इसलिये उसके अनुकूल अर्थ किया गया है। इस अर्थके अनुसार इस मन्त्रका यह भाव है कि, राष्ट्रसभामें राजाका प्रवेश होनेपर भी वह राजासे अलग है। जिस सभापर राजाका अधिकार नहीं है, वह राजासे श्रेष्ठ है और स्वतन्त्र अधिकार रखनेके कारण उसे राजासे दूर समझना भी ठीक है। इसके सिवा इसमें यह भी लिखा है कि, राष्ट्रव्यवहारमें राष्ट्रसभाके सभासद राजाको शिक्षा दें। इसी मन्त्रसे राजा शिष्य और सभासद गुरु सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार सभासद पितर बताये गये हैं। इस मन्त्रमें राजा अपनी सभाके सभासदोंसे प्रार्थना करता है कि, सभा और समित मेरी रक्षा करें, क्योंकि ये राजासे दूर रहकर उसका हित करनेवाली और उसे ज्ञान देनेवाली हैं। हे पितृस्थानी सभासदो! जिस सभासदसे मैं मिलूं वह मुझे शिक्षा दे, जिसमें मैं अधिवेशनोंमें अच्छी बातें कहूं।

कुछ लोग इस मन्त्रका यह अर्थ भी करते हैं;—"हे (परलोकगत) पितरो! प्रजापतिकी पुत्रियां सभा और समिति मिलकर मेरी रक्षा करें, जिससे मैं मिलूं वह मुझे शिक्षा दे और मैं अधिवेशनोंमें अच्छी बातें कहूं।" इस अर्थके अनुसार भी सभा और समितिकी विशेष प्रतिष्ठा

पता लगता है। क्योंकि वे प्रजापतिकी पुत्रियां बतायी गयी हैं और राजा चाहता है कि, वे उसकी रक्षा करें। राजाकी यह भी आकांक्षा है कि, जिस सभासदसे वह मिले वह उसको अच्छी सम्मति दे और अधिवेशनोंमें वह (राजा) अच्छी बातें कहे। उक्त मंत्रसे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि, प्रजाको राजनिष्ठ होनेकी जैसी आवश्यकता है, वैसी ही राजाको प्रजानिष्ठ होनेकी भी है। वैदिक समय की राजनीतिमें राजा और प्रजाका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध दिखता है। पर राजाकी अपेक्षा राष्ट्र श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि राष्ट्र तो राजाके बिना हो सकता है, पर राजाका अस्तित्व राष्ट्रके बिना असम्भव है। इसलिये राजा गौण और राष्ट्र प्रधान है।

रामायणके उत्तरकांडके ११२ वें सर्गमें रामराज्यकी प्रशंसा-के विषयमें लिखा है;—

"काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला दिशः।
हृष्टपुष्ट जनाकीर्णं पुरं जनपदास्तथा॥" १२॥

अर्थात् समयपर वृष्टि होती है, सुभिक्ष है, अकाल नहीं है, मांगनेसे ही अन्न मिल जाता है। आकाश निर्मल है अर्थात् युद्धादि नहीं है तथा नगर और प्रदेश हृष्टपुष्ट मनुष्योंसे पूर्ण हैं। यह सुराजका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इससे जाना जाता है कि, जिस राज्यमें मांगनेसे भीख नहीं मिलती, दुर्भिक्ष रहता यथा

समय वर्षा नहीं होती, शत्रुओंके आक्रमण होते हैं या प्रजा-को शत्रुकी चिन्ता लगी रहती है और प्रजा हृष्टपुष्ट नहीं रहती, वहां सुराज नहीं होता।

हिन्दुओंकी राजकल्पनामें राजाके नियमानुयायी होनेको बहुत प्रधानता दी गयी है। राजनियम वा राजनीतिके विरुद्धाचरण करनेवाले राजाको दण्ड देनेकी व्यवस्था भी की गयी है। मनुस्मृतिके आठवें अध्यायका ३३६ वां श्लोक है;—

"कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा॥"

अर्थात् जहां साधारण प्रजाको एक कार्षापण वा पैसा दण्ड होता हो, वहां उसी अपराधके लिये राजाको १००० कार्षा-पण या पैसे दण्ड होना चाहिये। इस अवतरणसे स्पष्ट होता है कि, प्रजा राजाको दण्ड दे सकती हैं और अपराधी राजा अदंड्य नहीं है। राजाकी राष्ट्रनिष्ठ होनेकी कितनी आव-श्यकता है यह बात भी जान रखने योग्य है। अथर्ववेदके १५ वें कांडके इन मंत्रोंसे इसका पता चलता है;—

स विशोनु व्यचलत्॥ १॥
तं सभा समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन्॥ २॥
सभायाश्च वै समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ ३॥

अथर्ववेद १५।९

अर्थात् "वह (जो राजा) प्रजाका अनुसरण करता है, सभा, समिति, सेना और सुरा (ये सब) उसका अनुसरण करती हैं। सभा, समिति, सेना और सुराका वह प्रिय पात्र बनता है। ऐसा जो जानता है (वह राजनीति समझता है)।"

इस मंत्रका अभिप्राय यह है कि, जो राजा प्रजाके अनुकूल आचरण करता है, राष्ट्रसभा, सेना और सुरा उसके साथ रहती हैं। यहां "सुरा" शब्दको देखकर लोग भूलभुलैयामें पड़ेंगे, क्योंकि इसका साधारण अर्थ मद्य वा शराब है; परन्तु वैदिक साहित्यमें इसके अनेक अर्थ हैं यथा मद्य, जल, पीनेके वर्त्तन, सर्प, उत्कृष्ट दान, दातृत्व, साधुत्व, सद्गुण, ऐश्वर्य आदि। इन सब अर्थोंपर ध्यान रखकर ऊपर लिखे मंत्रोंमें "सुरा" शब्द किस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है यह झट समझमें आ जायगा। सभा, और सेनाके साथ सुराका उपयुक्त अर्थ "ऐश्वर्य" भी हो सकता है। प्रजाकी सम्मतिके अनुकूल चलनेवाले राजाका सभा, समिति और सेनाके साथ ही ऐश्वर्य भी अनुसरण करता है। अर्थात् जो राजा प्रजा वा राष्ट्रके अनुकूल नहीं आचरण करता, सभा, समिति, सेना और सुरा उसका साथ नहीं देतीं। राजाका महत्व मुख्यतः प्रजाकी निष्ठा, सैन्यबल और विपुल सम्पत्तिपर है। यदि ये राजाके साथ न हों, तो राजा राजा नहीं रह सकता। इस मंत्रसे जाना जाता है कि, राष्ट्रसभा, सेना और राष्ट्रकोषपर राजा-

का अधिकार नहीं होता था। इससे यह ध्वनि भी निकलती है कि, सेना और कोषपर प्रजाका ही अधिकार रहता था, राजाके अधीन न सेना ही थी और न कोष ही था। इससे स्पष्ट है कि, वैदिक कालमें नियंत्रित शासनपद्धति प्रचलित थी और राजा भी नियंत्रित होता था।

कैसे राजाको देखकर प्रजा प्रसन्न होती है इस विषयमें ऋग्वेदकी यह ऋचा है ;—

सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्विषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥१०॥

ऋग्वेद १०।७१

इसका अर्थ है कि, "सब मित्र (सभासद) यशस्वी होकर आनेवाले सभाको सहन करनेवाले मित्रको (राजाको) देख कर प्रसन्न होते हैं, क्योंकि वह अन्यायको दूर करनेवाला, अन्नकी वृद्धि करनेवाला है (और) बल बढ़ाकर प्रजाके हित करनेके लिये पूर्ण रूपसे योग्य है।" इस ऋचामें बताया गया है कि, लोकप्रिय होनेके लिये राजामें किन गुणोंकी आवश्यकता होती है। तथा कैसे राजाको राष्ट्रसभा और सेना मानती है। जो राजा राष्ट्रका सखा वा मित्र होता है, राष्ट्रसभाकी सम्मतिके अनुसार कार्य करता है, अपने कार्योंसे यशसम्पादन करता है, अन्यायको दूर कर न्याय करता है, अपनी प्रजाके लिये पेटभर अन्नकी व्यवस्था करता है, राष्ट्रका बल वीर्य बढ़ाता है और सब प्रकारसे प्रजाका हित करता है,

उसे देखकर प्रजा प्रसन्न होती है और उसका अनुसरण कर अपना सर्वस्व उसे देती है। पर जो ये सब काम नहीं करता, प्रजा भी उसका अनुसरण नहीं करती।

राजा राष्ट्रसभाकी कैसी अधीनता स्वीकार करता था तथा सभासदोंका कैसा सम्मान करता था, यह ऋग्वेदकी निम्न-लिखित ऋचासे जाना जाता है ;—

अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना।
आ वश्चित्तमावो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे॥ ४॥

ऋग्वेद १०।१६६॥

इस ऋचामें राजा राष्ट्रसभाके सभासदोंसे कहता है, "हे लोकसभाके सभासदो! सब प्रयत्नोंसे विजयी और तेजस्वी होकर मैं आया हूं; तुम्हारा विचार और तुम्हारी सभा अब मैं स्वीकार करता हूं।" योग्य काम करनेकी लिये राजा को आज्ञा देना सभाका और काम हो चुकनेपर सभामें आकर उसका समाचार देना और कहना कि "और जो काम हों उन्हें करनेको मैं तैयार हूं" राजाका कर्त्तव्य था। इस मंत्रका यही भाव है।

अनियन्त्रित राजा।

वेदादि शास्त्रोंमें जिस प्रकार नियंत्रित राजा राष्ट्रका सौन्दर्य बताया गया है, उसी प्रकार अनियंत्रित राजा राष्ट्रका नाशक कहा गया है। राजा अकेला कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि वही सब कुछ नहीं है मनुस्मृतिके ९ वें अध्यायमें राज्यके सात अङ्ग कहे हैं; सातों मिले विना राज्य सर्वाङ्ग पूर्ण नहीं होता। कहा है;—

स्वाम्यामात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा।
सप्त प्रकृतयो ह्येता सर्वाङ्गं राज्य मुच्यते॥

अर्थात् राजा, मंत्री, राजधानी, राष्ट्र, कोश, दण्ड और मित्र ये राज्यके सात अङ्ग हैं। राष्ट्रका अर्थ देश, दण्डका सेना और मित्रका प्रजा भी किया जाता है। इन सातों अङ्गोंमें दण्डका प्रताप और प्रभाव बहुत अधिक है। राजाकी उत्पत्तिके पहले ही दण्डकी उत्पत्ति मनुस्मृतिमें लिखी गयी है। दण्ड सदा राजाकी सहायता करता है, पर अधार्मिक राजाके ऊपर भी चलता है।

तस्यार्थे सर्व्वभूतानां गोप्तारं धर्म्ममात्मजम्।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः॥ १४॥
तस्य सर्व्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च॥ १५॥

तं देशकालौ शक्तिञ्च विद्याञ्चावेक्ष्य तत्त्वतः ।
यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु ॥ १६ ॥
स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः ।
चतुर्णामाश्रमाणाञ्च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥ १७ ॥
दण्डःशास्ति प्रजाः सर्व्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्म्मं विदुर्बुधाः ॥ १८ ॥
समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वारञ्जयति प्रजाः ।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्व्वतः ॥ १९ ॥
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥ २५ ॥
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः ।
धर्म्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥ २८ ॥

अर्थात् राजाकी सहायताके लिये पहले ईश्वरने अपनी आत्मासे धर्म्म वा दण्डको उत्पन्न किया जिसपर सब कुछ अवलम्बित है। उसी दण्डके भयसे चराचर प्राणीमात्र अपने धर्म्मसे नहीं डिगते। देश, काल, शक्ति और विद्याको भली भांति देखकर राजा उसे अन्यायियोंके प्रति चलावे। यह दण्ड ही वस्तुतः राजा है, वही नेता है, वही पुरुष हैं और वही मनुष्योंके चारों आश्रमोंको ठीक रखनेवाला है। दण्ड सब प्रजाको आज्ञा देता है, और दण्ड ही रक्षा करता है, जब सब सोते हैं, तब दण्ड ही जगाता है ; दण्डको ही बुद्धिमान लोग धर्म्म कहते हैं। जब समझ बूझकर यथायुक्त प्रकारसे

दण्ड ग्रहण किया जाता है, तब प्रजामें प्रसन्नता होती है; परन्तु जब बिना विचारे उसका ग्रहण किया जाता है, तब सबका नाश होता है। जहां श्यामवर्ण और रक्तनेत्र पाप-नाशक दण्ड विचरता है, वहां प्रजा व्याकुल नहीं होती। यह दण्ड कैसा कठिन है, इस विषयमें मनुजी कहते हैं कि, दण्ड महत्तेज है, जिसका प्रयोग करना आत्मानभिज्ञके लिये कठिन है और यही दण्ड राजधर्मसे विचलित राजाको भी बन्धु बान्धव सहित नष्ट कर देता है।

वाल्मीकीय रामायणमें तो प्रजाकी अकालमृत्यु भी राजा-के अन्यायसे बतायी गयी है। उत्तर काण्डमें लिखा है;—

राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजाह्यविधि पालिताः।
असद्वृत्ते हि नृपतौ अकाले म्रियते जनः॥

सर्ग ८६। श्लो० १६।

अर्थात् राजाके दोषोंसे प्रजाका विधिपूर्वक पालन नहीं होता और इसीसे इसपर विपत्तियां आती हैं और जब राजा अन्याय करता है, तब प्रजाकी अकालमृत्यु होती है।

राजाका प्रधान कार्य प्रजाकी रक्षा करना है। यदि प्रजा सुरक्षित नहीं रहती थी और उसपर किसी प्रकारकी विपत्ति आती थी; अथवा प्रजा पाप करती थी तो उसका कारण राजा समझा जाता था। यहांतक कि, अरक्षित प्रजा जो पाप करती थी, उसका साझी भी राजा होता था। याज्ञवल्क्य संहितामें लिखा है;—

अरक्ष्यमाना: कुर्वन्ति यत्किञ्चित्किल्बिषं प्रजा: ।
तस्माच्च नृपतेरर्द्धं यस्मात् गृह्णात्यसौ करान् ॥

१।३२७।

अर्थात् अरक्षित प्रजा जो कुछ पाप करती है, उसका आधा पाप राजाका होता है, क्योंकि वह उससे कर लेता है।

अथर्ववेदमें भी अनियन्त्रित राजाकी निन्दा है। पांचवें अध्यायके इस मन्त्रसे जाना जाता है कि, वैदिक युगकी राजकल्पनामें अनियन्त्रित राजाका स्थान नहीं था;—

न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्य मभि वर्षति ।
ना ऽस्मै समिति: कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥१५॥

अथर्ववेद ५।१९॥

अर्थात् व्यभिचारी वा अनयन्त्रित राजाके राज्यमें वर्षा नहीं होती, उसे समिति योग्य नहीं समझती और उसके मित्र (सभासद) वशमें नहीं होते।

यजुर्वेदके अनेक मन्त्रोंमें अलङ्कार रूपसे अनियन्त्रित राजाकी निन्दा की गयी है। इन मन्त्रोंको पढ़कर कोई निरपेक्ष मनुष्य यह नहीं कह सकता कि, हिन्दू लोग अनियन्त्रित राजपद्धतिके पक्षपाती थे। हम २३वें अध्यायसे दो ही मन्त्र नीचे उद्धृत करते हैं;—

यकासकौ शकुन्तिका हलगिति वञ्चति ।
आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥ २२॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते ।
शूद्रायदर्य्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

शतपथ ब्राह्मणमें पहले मन्त्रका अर्थ इस प्रकार किया गया है;—

"यकासकौ शकुन्तिकेति। विड्वै शकुन्तिका हलगिति वञ्चतीति विशो वै राष्ट्राय वञ्चत्याहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारकेति विड्वै गभो राष्ट्रं पसो राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्रष्ट्री विशं घातुकः।" श० का० १३ अ० २ ब्रा० ९ कं० ६

इस मन्त्रमें प्रजा शकुन्तिका बतायी गयी है। शकुन्तिका बड़ी छोटी चिड़िया होती है। बड़ी चिड़ियाके सामने शकुन्तिका जैसी दबी रहती है, राजशक्तिके सामने प्रजा भी वैसी ही रहती है। फिर प्रजाको गभ और राजाको पस कहते हैं। गभका अर्थ छोटी दरार है और पसका बलिष्ट वस्तु है। छोटी दरारपर बल देनेसे उसकी जैसी दशा होती है, वैसी राजशक्तिके दबावसे प्रजाकी होती है। राजा प्रजाको मारता है इसी कारण अनयन्त्रित राजा प्रजाका घातक है।

दूसरे मन्त्रके विषयमें शतपथ ब्राह्मण कहता है।

"यद्धरिणो यवमत्ति। विड् वै यवो राष्ट्रᳫं हरिणो विशमेव राष्ट्राद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति। न पुष्टं पशु मन्यते तस्माद्राजा पशून् पुष्यति। शूद्रा यदर्य्यजारा न पोषाय धनायति। तस्माद्वैशी पुत्रं नाभिषिञ्चति।" श० का० १३ अ० २ ब्रा० ९ कं० ८

इस मन्त्रमें प्रजाकी यवसे और राजशक्तिकी हरिणसे उपमा दी गयी है। प्रजा अनयन्त्रित राजाका भोजन है, इसलिये अनयन्त्रित राजा प्रजाको खाता है। वह पुष्ट पशु नहीं समझता है, इससे राजा पशुपालन नहीं करता। जब शूद्रा आर्यकी रक्षिता हो, तो उसका पति अपनी उन्नतिके लिये अर्थोपार्जन नहीं करता। इससे वैश्याके पुत्रका अभिषेक न करना चाहिये।

शतपथ ब्राह्मणका जो भाषान्तर जुलियस एगलिङ्गने किया है और लंदन प्रेसमें छपा है तथा जिसका सम्पादन मैक्समुलरने किया है, उसमें उल्लिखित अंशोंका इस प्रकार भाषान्तर लिखा है;—

6. [The Adhvaryu addresses one of the attendant maids Vag. S. XXIII, 22,] 'That little bird,'—the little bird, doubtless, is the people (or clan),—'which bustles with (the sound) "ahalak,"'—for the people, indeed, bustle for (the behoof of) royal power,– 'thrusts the "pasas" into the cleft, and the "dharaka" devours it,' the cleft, doubtless, is the people, and the 'pasas' is royal power; and royal power, indeed, presses hard on the people, whence the wielder of royal power is apt to strike down people.

8. (The chamberlain addresses the king's fourth wife, Vag. S. XXIII, 30,) 'When the deer eats the corn,'—the grain (growing in the field), doubtless, is the people, and the deer is royal power; he thus makes the people to be food for the royal power, whence the wielder of royal power feeds on the people;—'it thinks not of the fat cattle,'—whence the king does not rear cattle;—when the sudra woman is the Arya's mistress, he seeks not riches that he may thrive, (1) hence he does not annoint the son of a Vaishya woman.

---

(1) Mahidhara interprets—then he (her husband), the sudra, does not wish for wealthy, but is unha ppy.

(७) (अध्वर्यु एक परिचारिकाको सम्बोधन कर कहता है, वाजसनेयी संहिता २३।२२) 'वह छोटी चिड़िया,' निःसन्देह छोटी चिड़िया प्रजा (या जाति) है,—'जो "अहलक" (शब्द) करके व्याकुल होकर इधर उधर भागती है,'—क्योंकि निःसन्देह प्रजा राजशक्तिके (राजशक्तिवृद्धिके) कारण इधर उधर भागती है,—' "पसको" दरारमें घुसेड़ता है और "धारका" उसे निगल जाती है,'—निःसन्देह दरार प्रजा है और 'पस' राजशक्ति है; और राजशक्ति वास्तवमें प्रजाको बहुत दबाती है, जिससे राजशक्तिका परिचालक प्रजाके लिये यत्नशील है।

(८) (कत्तु की राजाकी चतुर्थ स्त्रीको सम्बोधन कर कहता है,' वाजसनेयी संहिता २३।३०) 'जब हरिण अन्न खाता है,'—निःसन्देह (खेतमें उपजा हुआ) अन्न प्रजा है, और हरिण राजशक्ति है; इस प्रकार वह प्रजाको राजशक्तिका भोजन बनाता है, जिससे राजशक्तिका परिचालक प्रजाका भक्षक है;—'वह मोटे पशुका विचार नहीं करता,'—जिससे राजा पशुपालन नहीं करता;—'जब शूद्रा आर्यकी जारा (रक्षिता) होती है, वह अपनी उन्नतिके लिये धनकी खोज में नहीं रहता इससे वह वैश्याके पुत्रका अभिषेक नहीं करता।

---

(१) महीधर यह अर्थ करता है—तब वह शूद्र (शूद्राका पति) धनकी इच्छा नहीं करता, पर दुःखी होता है।

शतपथ ब्राह्मणमें पूरी व्याख्या नहीं है। परन्तु तौ भी उससे कई शब्दोंका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। ऊपर जो मंत्र दिये गये हैं, शतपथ ब्राह्मणके बताये हुए मार्गसे चलनेपर उनका अर्थ जाननेमें कठिनाई नहीं पड़ती। पहले मन्त्रमें प्रजा शकुन्तिका बतायी गयी है। बड़ी चिड़ियोंके डरसे शकुन्तिकाकी जैसी दशा है, अनियन्त्रित राजाके डरसे प्रजा भी उसी प्रकार डरी रहती है। फिर प्रजा "गभ" और अनयन्त्रित राजा "पस" बताया गया है। जिस प्रकार दराव-में कोई चीज घुसेड़ देनेसे वह फट जाती है, उसी प्रकार प्रजा-पर अनियन्त्रित राजशक्तिका दबाव पड़नेसे वह छिन्न भिन्न हो जाती है अर्थात् पिस जाती है। इसीसे अनियन्त्रित राजा प्रजाका घातक वा हनन करनेवाला कहा गया है। दूसरे मन्त्रमें पहले तो प्रजा यव और राजा हरिण बताया गया है। और फिर राजाको शिकारीसे और प्रजाको पुष्ट पशुसे उपमा दी गयी है। हरिण जिस प्रकार खेतमें बोया यव खा डालता है, उसी प्रकार अनियन्त्रित राजा प्रजाको खा डालता है अर्थात् वह प्रजाका भक्षक है। जैसे शिकारी पुष्ट पशुका विचार नहीं करता और उसे मारकर खा जाता है, वैसे ही राजा प्रजाका विचार न करके उसे नष्ट कर देता है। अर्थात् शिकारी जैसे यह नहीं विचार करता कि, पुष्ट पशु किसी समय काम आवेगा, बल्कि वह उसे मारकर खा जाता है, वैसे ही अनयन्त्रित राजा प्रजासे लाभकी आशा नहीं

करता और उसको नष्ट कर देता है। सोनेके सब अण्डे एक साथ ले लेनेवाले लालचीने जैसे अण्डे देनेवाली मुर्गीका पेट फाड़ डाला, वैसे ही अनियन्त्रित राजा अपनी प्रजाका सर्वनाश कर डालता है। इसलिये वैशीपुत्रका अभिषेक न करना चाहिये। यहां वैशीका अर्थ वैश्यकी स्त्री न करके वेश्या करना चाहिये। यह वेश्या जातिकी शूद्रा और आयकी रक्षिता है। जिसकी उत्पत्ति नियमसे नहीं हुई, वह कभी नियन्त्रित नहीं रह सकता, इसीलिये वैशीपुत्रके अभिषेकका निषेध है। राष्ट्री शब्दका अर्थ है "राष्ट्रं यस्य अस्तीति" जो अपना राष्ट्र समझे अर्थात् जो प्रजाकी वस्तुको अपनी कहे, वही राष्ट्री है। इसीसे हमने राष्ट्रीका अर्थ अनियन्त्रित राजा किया है।

अनियन्त्रित राजाके विषयमें मनुस्मृतिमें तो यहांतक लिखा है कि,

> मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
>
> सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥ अ०७।१११

अर्थात् जो राजा मूर्खतावश अपनी प्रजापर अत्याचार करता है, वह शीघ्र ही राज्य, जीवन और मित्रों सहित नष्ट होता है। यदि कोई प्रश्न करे कि, क्या ऐसा कभी हुआ भी है, तो मनुस्मृतिके इसी सप्तम अध्यायमें उसका प्रमाण मिलता है। मनुस्मृति कहती है,

वेनो विनष्टो ऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः।
सुदासो यावनिश्चैव सुमुखो निमिरेवच॥ १६१॥

अर्थात् अविनयसे वेन, नहुष, सुदास, सुमुख और निमि नष्ट हुए। इनमें वेन और नहुषकी आख्यायिकाएं ही उल्लेख योग्य हैं। वेनने वर्णसङ्करता फैलायी थी और वह लोगोंको ईश्वराराधन नहीं करने देता था। इसीसे ऋषियोंने उसे मन्त्रपूरित कुशोंसे मार डाला। (इसका विस्तृत वर्णन पहले दिया जा चुका है।) नहुष राजा आयुषका बेटा और पुरुरवाका पोता था। यह बड़ा बली और बुद्धिमान था। जब राक्षसरूपी वृत्र ब्राह्मणको मारनेके कारण इन्द्रको पानीमें छिपे रहनेका प्रायश्चित करना पड़ा था, तब इन्द्रासन शून्य होनेपर नहुष उसपर बैठाया गया। यहांसे वह इन्द्राणीको प्रसन्न करनेके लिये सप्तर्षियोंसे अपनी पालकी उठवाकर इन्द्राणीके पास जाने लगा। शीघ्रता करनेके लिये ऋषियोंसे "सर्प, सर्प" कहता था। इसपर अगस्त्यने शाप दिया कि, तू सर्प हो जा और वह सर्प होकर पृथिवीपर रहने लगा।

जो कुछ ऊपर लिखा गया है, उसे पढ़कर अब किसीको यह सन्देह नहीं हो सकता कि, हिन्दुओंके राजाकी सत्ता अबाधित वा अनियन्त्रित होती थी, प्रत्युत उसका दृढ़ विश्वास हो जायगा कि, हिन्दुओंकी राजकल्पनामें अनियंत्रित राजाका निन्दाके सिवा और किसी लिये उल्लेख नहीं हुआ है।

देशभक्ति।

देशभक्ति और प्रजासत्ताक शासनपद्धतिका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। देशमें सुखसमृद्धि तभी हो सकती है, जब राजाके अधिकार नियन्त्रित हों और प्रजासत्ताका प्राबल्य हो। जहां राजा अनियन्त्रित होता है, वहां प्रजाकी हानि होती है। इसलिये राजाको नियन्त्रित रखनेके लिये प्रजाशक्तिका प्रयोजन होता है। परन्तु प्रजाशक्तिको जगानेके लिये देशभक्तिकी आवश्यकता होती है, इसलिये जहां देशभक्ति नहीं होती, वहांकी प्रजा राजाको नियन्त्रित नहीं रख सकती। इसके अतिरिक्त जिस देशकी प्रजामें देशभक्ति नही होती, अन्य देशोंमें उसका सम्मान नहीं होता और उसपर विदेशियोंका आधिपत्य होता है। इससे यह सिद्धान्त निकला कि, प्रजामें देशभक्ति होना अत्यन्त आवश्यक गुण है।

हम दिखा चुके हैं कि, हिन्दुओंकी राजकल्पनामें राजा नियंत्रित होता था और प्रजासत्ताका प्राधान्य रहता था, इस लिये अब विशेष रूपसे इसका बताना अनावश्यक है कि, हमारी आर्य जातिमें देशभक्ति बहुत थी। पर इस समय जब लोग यह कहने लगे हैं कि, देशकी भक्ति करना भी हमने विदेशियोंसे सीखा है, तब यह बताना ही पड़ता है कि, हिन्दूलोग देशभक्तिको कैसा महत्त्व देते थे। यों तो प्रायः

समस्त संस्कृत साहित्यमें देशभक्तिसूचक वचन मिलते हैं, पर वेदोंमें भी इनकी कमी नहीं है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्व वेदके कई मंत्रोंमें स्पष्ट वा अस्पष्ट रूपसे देशभक्तिकी बातें कही गयी हैं। यजुर्वेदके २० वें अध्यायके इस मंत्रसे जाना जाता है कि, उस समयके लोग देश सम्बन्धीय किसी कार्यके नष्ट न होने देनेका प्रयत्न किया करते थे और भूलचूक होजाने पर उसका प्रायश्चित्त करते थे ;—

"यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा: वयं यदेकस्याधि
धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ १७॥

अर्थात् गांव, बन, सभा, इन्द्रिय, शूद्र, आर्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) इन सबके सम्बन्धमें हमसे जो प्रमाद हुआ हो उसकी यह निष्कृति है। इस मंत्रसे यह भाव निकलता है कि, देशहितकर इन संस्थाओंके विरुद्ध कार्य होनेसे देशका अहित होगा। ग्रामव्यवस्थाके नियम, वनविभागके नियम, सभाकी कार्यपद्धतिके नियम, इन्द्रियविषयक नीति सम्बन्धीय नियम, ब्राह्मणादि चातुर्वर्ण्यकी व्यवस्थाके नियम जैसे राष्ट्रहित-कर नियमोंके अनुसार चलना पुण्य और इनके विरुद्ध पाप समझा जाता था। इससे सिद्ध होता है कि, जिस समय इस मंत्रका आविर्भाव हुआ था, उस समय देशहितकर कार्योंमें बाधा देनेवालेको प्रायश्चित्त करना पड़ता था।

देशहितके कार्योंका निर्णय सदा सभाओंद्वारा हुआ करता है, इसलिये वेदोंमें सभाओंकी बड़ी महिमा गायी गयी है। सभासम्बन्धीय मंत्रोंके अर्थपर विचार करनेसे जाना जाता है कि, वेदोंमें सब लोगोंको देशहितकर कार्य करनेका उपदेश है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद तीनों वेदोंमें यह मंत्रांश थोड़े बहुत परिवर्त्तित रूपमें पाया जाता है ;—

समानो मंत्रः समितिः समानी
समानो मनः सह चित्तमेषाम्।

मंत्र समान, समिति समान, मन समान और इनके चित्त समान हैं।" समानी सभाका अर्थ है जिस सभामें सब लोग जाकर मत दे सकें। जिस सभामें अकेले ब्राह्मण वा अकेले क्षत्रिय वा अकेले वैश्य जाकर मत देने पावें, वह समानी सभा नहीं हो सकती। वेदोंमें ऐसी विषम सभाकी प्रशंसा नहीं है। इस मंत्रका भाव है कि, राष्ट्रसभामें एकाग्रचित्त होकर एक मनसे सब लोगोंको राष्ट्रहितकर कार्योंका विचार करना चाहिये।

इन मंत्रोंके सिवा अथर्ववेदके १२ वें कांडके पहले सूक्तमें देशभक्तिके मंत्रोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि, इस सूक्तका आविर्भाव ही आर्योंमें देशभक्ति उत्पन्न करनेके लिये हुआ है। यह सूक्त "पृथिवी सूक्त" कहाता है और इसमें

६३ मंत्र हैं। ये सभी देशभक्तिके मंत्र हैं। इन सबका यहां उद्धृत करना अनावश्यक समझ इस सूक्तके केवल पांच मंत्र ही यहां दिये जाते हैं।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः॥ तवेमे पृथिवि पञ्चमानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति॥ १५॥

अर्थात् "हे मातृभूमि! जो हम लोग तुझसे उत्पन्न हो तेरे ही आधारसे अपने सब काम करते हैं; जो तू सम्पूर्ण पशु, पक्षी, मनुष्य और सम्पूर्ण प्राणियोंको आधार देकर पालती पोसती है, हमारे जिस जीवनके निमित्त यह देदीप्यमान सूर्य अपनी अमृतमय किरणोंको चारों ओर फैलाता रहता है, वे हम पांच प्रकारके मनुष्य तेरी सेवा करनेकी इच्छा रखते हैं।" यहां पांच प्रकारके मनुष्योंके लिये स्पष्ट ही मातृभूमि वा देशकी सेवाका उल्लेख है। ये पांच प्रकारके मनुष्य कौन हैं? "पाञ्चजनाः" वा "पञ्चमानवाः" इस वैदिक प्रयोगका लोगोंने बड़ा मनमाना अर्थ किया है। परन्तु इसका अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद है। मद्रास प्रदेशमें "पञ्चम" नामकी अस्पृश्य जाति है, वह भी निषादसे ही सम्बन्ध रखती है। उसका "पञ्चम" नाम ही उसकी पांचवी जाति बताता है। इस मंत्रका यह भाव है कि, देशसेवा ब्राह्मण वा क्षत्रियोंका ही कर्त्तव्य कर्म नहीं है। वैश्यादिको भी उससे विमुख न होना चाहिये।

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥ ५४ ॥

इस मंत्रका अर्थ है। "मैं अपनी मातृभूमिके लिये तथा उसके दुःख निवारणके लिये सब प्रकारके कष्ट सहनेको तैयार हूं। वे कष्ट जिस ओरसे आवें और चाहें जिस समय हों मुझे चिन्ता नहीं है।" इस मंत्रका भाव बड़ा सुन्दर है। मातृभूमिकी सेवा करनेवालेके ऊपर चारों ओरसे विपत्तियां आती हैं और इनका कोई समय निश्चित नहीं होता। पर इस मंत्रमें कहा गया है कि,मैं सब प्रकारके कष्टोंको सहनेको तैयार हूं और मुझे उनकी कोई परवाह नहीं है। इससे यह जाना जाता है कि, मातृभूमिके सेवकोंको बड़े कष्ट मिलते हैं और उन्हें उनके सहने लिये तैयार होकर कार्य आरम्भ करना चाहिये।

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्याम् ॥
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥

अर्थात् "देशमें जहां जहां ग्राम, वन, सभा, संग्राम, समितियां हों वहां वहां (हे मातृभूमि) हम तेरी प्रशंसा करें।" इस मंत्रमें बताया गया है कि, सर्वत्र मनुष्यको अपने देशका हितचिन्तन करना चाहिये, चाहे वह अपने गांवमें हो अर्थात् गृहस्थ हो या वानप्रस्थ, चाहे सभामें बैठा हो, या लड़ाईपर गया हो। सोते, जागते, उठते, बैठते, खाते, पीते उसे अपनी मातृभूमिको न भूलना चाहिये।

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीचे तद् वनन्ति मा ॥
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोहतः ॥ ५८ ॥

अर्थात् "अपने देश वा मातृभूमिके सम्बन्धमें जो कहता हूं वह उसका हितकर है, जो देखता हूं वह उसकी सहायताके लिये है। प्रकाशमान, तेजस्वी और बुद्धिमान होकर मातृभूमिका दोहन करनेवाले शत्रुओंका नाश करता हूं।" इस मन्त्रमें बताया गया है कि, मनुष्यको जो कुछ देखना चाहिये, वह मातृभूमिके हितकी दृष्टिसे देखना चाहिये; जो बात मुंहसे निकलनी चाहिये, वह मातृभूमिका हित विचारकर निकालनी चाहिये। अर्थात् मनुष्यको अपने व्यक्तिगत स्वार्थके लिये कोई काम न करके देशके लाभालाभकी ओर ध्यान रखना चाहिये। जो स्वदेशका अहित करता हो, उसे मारकर देशकी रक्षा करनी चाहिये। यह लुटेरों और डाकुओंसे देशकी रक्षा करनेका उपदेश है।

अन्तमें मातृभूमिकी प्रार्थनाका यह मंत्र लिखते हैं ;—

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ॥
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥६३॥

"हे पृथिवी माता वा मातृभूमि! मुझे बुद्धिमान् कर और तेरे विषयमें प्रतिदिन चिन्ता करनेवाले, सूक्ष्म विचारवाले तथा दूरदर्शी मनुष्योंको तथा मुझे अपनी भूमिगत सम्पत्ति प्राप्त करा देनेवाली हो।" ॐ तत्सत्।

दैनिक भारतमित्र

हिन्दीका एकमात्र दैनिक पत्र है।

इस ढङ्गका अबतक कोई दैनिक पत्र हिन्दीमें नहीं निकला है। हिन्दीके सब प्रतिष्ठित पत्र तथा अंगरेजोंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध दैनिक पत्र इसकी उपयोगी, रोचक और सुपाठ्य लेखोंकी शैली और [illegible] एक स्वरसे सराहना करते हैं।

इसका वार्षिक मूल्य डाकसे भेजे जानेवाले स्थानोंके लिये १०) और चपरासीके द्वारा भेजे जानेवाले स्थानोंके लिये ६) रु० [illegible] महीनेके लिये क्रमशः ५) और ३) और एक महीनेका १) और ॥/) आने।

भारतमित्र

(साप्ताहिक)

यह हिन्दीका बहुत पुराना और प्रतिष्ठित समाचारपत्र है।

वार्षिक मूल्य २) रु०।

मिलनेका पता;—

मैनेजर, भारतमित्र,

९७, मुक्तारामबाबूष्ट्रीट—कलकत्ता।